महाराष्ट्र के
बंजारा लोकसाहित्य में समाज और संस्कृति

एम० फिल० (हिन्दी) उपाधि के लिए
प्रस्तुत लघुशोध प्रबन्ध
(सन् १९८१)

भारतीय भाषा-केन्द्र,
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-११००६७

अनुसन्धानकर्ता
मोतीराज राठोड

डॉ० एस० पी० सुधेश
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)

भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
दिनांक: 15-10-1981

प्रमाणित किया जाता है कि श्री मोतीराज राठौड़ ने मेरे निर्देशन में "महाराष्ट्र के बंजारा लोकसाहित्य में समाज और संस्कृति" विषय पर अपना लघु शोध प्रबन्ध लिखा है। मेरी जानकारी के अनुसार जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में अथवा अन्य विश्वविद्यालय में इस विषय पर कोई शोध प्रबन्ध अब तक प्रस्तुत नहीं किया गया है।

यह लघु शोध प्रबन्ध श्री राठौड़ का मौलिक प्रयास है।

(एस० पी० सुधेश)
शोध निर्देशक

अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
भूमिका		(क)-(ग)
पहला अध्याय:	बंजारा जमाति का संक्षिप्त इतिहास	1-15
दूसरा अध्याय:	महाराष्ट्र के बंजारा लोकसाहित्य का वर्गीकरण	16-41
तीसरा अध्याय:	बंजारा लोकसाहित्य और समाज	42-65
चौथा अध्याय :	बंजारा लोकसाहित्य और संस्कृति	66-95
उपसंहार :		96-101
परिशिष्ट (क):		102-116
परिशिष्ट (ख):		117-123
परिशिष्ट (ग):		123-128

भूमिका

भारत मैं बहुत सारी जनजातियां खाना बदोश जातियां रही है, जिनकी अपनी संस्कृति है, अपनी भाषा है । इनका लौक साहित्य आज भी इनके कण्ठ मैं सुरक्षित है । ऐसी जनजातियों मैं से बंजारा एक जाति रही है । इनका लौक साहित्य आज तक उपेक्षित रहा है । इसके दो कारण हमें दिखायी देते हैं । एक तो अन्य समाज के सम्पर्क मैं आने से वे घबराते हैं । दूसरा कारण यह है कि इनकी अपनी खास बोली रही है, जो समझ मैं जल्दी नहीं आती है । बलीराम पटेल ने मराठी भाषा मैं बंजारा जनजाति का इतिहास लिखा है जिसके कारण महाराष्ट्र मैं यह जनजाति परिचित हुई है । हिन्दी मैं डा० श्याम परमार ने "घुमन्तु बंजारों के लौक गीत" नामक एक निबंध लिखा है जो उनकी पुस्तक "लौक साहित्य विमर्श" मैं संकलित है । अंग्रेज विद्वानों ने बंजारा जनजाति का इतिहास तथा रीति-रिवाजों की चर्चा की है जिनमें

डब्ल्यू क्रुक-(The Tribes and castes of the North Western India. Vol-II

आर० व्ही० रसल -(The Tribes and castes at the provinces of India . Vol-II

एडगर थरस्टन-(Caste and Tribes of Southfern India. Vol-IV

आदि महत्त्वपूर्ण रहे हैं ।

बंजारा जनजाति पूरे भारत मैं दिखायी देती है । मैंने सिर्फ महाराष्ट्र के बंजारा लौक साहित्य मैं व्यक्त समाज तथा संस्कृति के विवेचन का प्रयास किया है । पहले अध्याय मैं इनका संक्षिप्त परिचय दिया है । दूसरे अध्याय मैं महाराष्ट्र के बंजारा लौक साहित्य का वर्गीकरण किया है । तीसरे अध्याय मैं इनके लौक साहित्य के माध्यम से इनके सामाजिक जीवन पर विचार किया गया है । चौथे अध्याय मैं इनकी संस्कृति की रूपरेखा प्रगट की गई है । उपसंहार मैं बंजारा

जनजाति के लोक साहित्य के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को दिया गया है और भारतीय स्तर पर इनके लोक साहित्य की शोध की आवश्यकता पर बल दिया है । इसके साथ इनकी बोली का भी भाषा वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन होना जरूरी है, आदि प्रश्नों को भी उठाया गया है ।

बंजारा जनजाति में जन्म होने के कारण इनका सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन नजदीक से देखा ही नहीं, जी भी सका हूं, जिसके कारण लोक साहित्य संकलन करने में अधिक कठिनाइयां नहीं आयी हैं । लोक साहित्य संकलन के लिये महाराष्ट्र के सभी विभागों में गया हूं, विशेष रूप से रामसिंग भानावत ग्राम फुलउमरी जिला अकोला, मुझे गुरुजी ग्राम उमरखेड़, चंद्राम गुरुजी सोलापुर, शंकरसिंग नाईक औरंगाबाद तथा के०बी० जाधव परभणी, किसन मक्काजी राठौड़ मुळेड़ जुलाल भंगतु राठौड़ चालीस गांव रणजीत नाईक बम्बई इनका सहयोग तथा मार्गदर्शन मुझे मिला जिनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं । गुरुवर डा० भ० ह० राजूरकर की प्रेरणा से मैं शोध के लिये यहां आया । यहां आने पर डा० नामवरसिंह ने बंजारों लोक साहित्य पर शोध करने का मुझे आग्रह किया । इन दोनों महानुभावों के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूं । डा० एस० पी० सुधेश जी के निर्देशन में मुझे काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिन्होंने इस लघु शोध प्रबन्ध के लिये ही मार्ग-दर्शन नहीं किया बल्कि मेरे साहित्यिक जीवन को नया मोड़ दिया है जिनके प्रति सद्भावनायें व्यक्त करता हूं । इन सारी घटनाओं में आरणीय उत्तम (भैया) संसद सदस्य,इनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है जिनकी इच्छा थी कि मैं कुछ शोध कार्य करूं । इसके साथ मेरे महाविद्यालय के प्राचार्य राजाराम राठौड़ , मेरे सहकारी प्राध्यापकगण , कर्मचारीगण तथा विद्यार्थियों का सहयोग समय-समय पर प्राप्त होता रहा है । दिल्ली निवासी मेरे स्नेही एस० के० थोरात तथा मोहिन्द्र वर्मा का स्नेह मुझे मिला जिनका वर्णन करना औपचारिकता है ।

मेरे शोध कार्य के समय गृहस्थी संभालकर मेरी प्रिय पत्नी कला राठौर ने जो सहयोग दिया है उसके लिए उनके प्रति आभार व्यक्त करना अपना धर्म समझता हूं।

मोती राज राठौर

दिनांक: 15-10-1991

पहला अध्याय

(क) बंजारा जनजाति का संक्षिप्त इतिहास

बंजारा जनजाति प्राचीन काल से व्यापार करनेवाली जाति रही है। इस जाति का मुख्य धन्धा बैलों की पीठ पर सामान लादकर एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक पहुंचाना रहा है।

इस जनजाति के उद्गम तथा विकास का इतिहास पूरी तरह उपलब्ध नहीं है। इसके रीतिरिवाज, संस्कार, बोली तथा वेशभूषा आदि के सहारे इसका इतिहास खोजा जा सकता है। बंजारा जनजाति के लोक-साहित्य में इनकी प्राचीन संस्कृति के अनेक संकेत मिलते हैं। बंजारा जनजाति के लोग मूलत: राजस्थान के रहनेवाले थे। राजस्थानी परम्परा तथा संस्कृति का गहरा प्रभाव इनके लोक-जीवन पर दिखायी देता है। एक लेखक के अनुसार --"उत्तर प्रदेश विशेष रूप से राजस्थान से विभिन्न जातियां दक्षिण में जाकर बस गईं, जैसे लोहार, चमार, और विभिन्न घुमक्कड़ जातियां।"[1]

बंजारा जनजाति का मूल स्थान राजस्थान रहा है। बंजारा शब्द का प्रयोग आजकल अधिक चल रहा है। यह शब्द घुमक्कड़ प्रवृत्ति के संदर्भ में अधिक प्रचलित है, किन्तु वास्तव में बंजारा एक जनजाति है, जो सदियों से व्यापार के लिये घूमती रही।

बंजारा जनजाति इस देश में दो करोड़ के आसपास है। यह विभिन्न नामों से पहचानी जाती है जिनमें ये नाम मुख्य हैं :- बनजारा, बंजारी, लभान,

---

1. बंजरंग लाल लोहिया - राजस्थान की जातियां, पृष्ठ-4 सं0-1954

लमानी, लबान, लमानी, लमाड़ी लम्बाड़ा किन्तु मोटे तौर पर ये सब लोग गोर बंजारा के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

इस देश में जातियों की उत्पत्ति का इतिहास देखने पर पता चलता है कि व्यवसाय के आधार पर अनेक जातियों तथा उपजातियों का विकास हुआ है । बंजारा जाति के लोग पहले राजस्थान में लवण का व्यापार करते थे । इसीलिए इस जाति को लमानी भी कहा गया । आगे चलकर लवण के साथ विभिन्न वस्तुओं का व्यापार भी ये लोग करने लगे । संस्कृत शब्द वाणिज्य हिन्दी में बनज के रूप में भी बोला जाता है । बनज करने वाला बंजारा कहलाया । मेरी एक पुस्तक[1] में बंजारा शब्द की उत्पत्ति तथा उसके नामकरण संबंधी विस्तृत चर्चा की गई है ।[2]

इतिहासकार प्र० रा० देशमुख ने अपनी मराठी पुस्तक में लिखा है - "आर्यपूर्व लोकांचा मुख्य धंदा व्यापार होता, पणी नावाची जमात व्यापारात प्रसिद्ध होती ।"[3] इसका आशय है कि आर्यपूर्व लोगों का मुख्य व्यवसाय व्यापार था । पणी नाम की जमात व्यापार के लिए प्रसिद्ध थी । आर्यों के जो शत्रु माने गये हैं उनमें पणी जमात भी रही है । इसका व्यापार जलमार्ग से होता था । जलमार्ग से व्यापार करने के कारण उन्हें पणी कहा जाने लगा होगा । पणी लोगों की संस्कृति तथा परम्परा का अध्ययन करने से पता चलता है कि बंजारा जनजाति पणी जमात की एक शाखा रही होगी । इतिहासकार प्र०रा० देशमुख ने पणी जमात और बंजारा जनजाति की तुलना करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि बंजारा जाति वैदिक आचार तथा वर्ण-व्यवस्था के बाहर थी ।

1- डा० प्रेमनारायण टण्डन- ब्रजभाषा सूर कोश , पृ०-1187, सं०-1962

2- प्रा० मोतीराज राठौड़ - बंजारा संस्कृति, पृष्ठ-11-13, सं०-1976

3- प्र० रा० देशमुख-सिंधु संस्कृति ऋग्वेद व हिन्दू संस्कृति , पृ०-158 संस्करण- 1966

पणी जाति के लोग पशुपालन करते थे, बंजारा जनजाति वाले भी गोपालन अपना धर्म समझते थे । बंजारा जनजाति में बारियां आज भी अपने सर पर सींग लगाती हैं । पणी जाति में भी सींग लगाने की प्रथा थी । मूल व्यवसाय तथा संस्कृति के आधार पर पणी और बंजारा जनजाति में समानता पायी जाती है ।

बंजारा जनजाति में आज भी पणी, बनी, बानी सानी दानी आदि नाम लड़कियों के दिखायी देते हैं । आर्य पणी लोगों पर आक्रमण कर, उनकी धन दौलत लूट लेते थे । इसलिए आगे चलकर धन दौलत इकट्ठा करना पणी जाति में अधर्म समझा जाने लगा । बंजारा जाति में भी धन सम्पत्ति की अधिक लालसा करना पाप माना जाता है । तात्पर्य यह है कि बंजारा तथा पणी जाति में समानता दिखायी देती है । पर इतिहास में इसके अधिक प्रमाण नहीं मिलते ।

टाड साहेब ने राजस्थान का इतिहास लिखा है । इसमें बंजारा जनजाति का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता पर उस समय ऊंटों के ऊपर सामान लादकर व्यापार करनेवाली भूमिया नामक एक जाति का उल्लेख किया गया है । बंजारा जनजाति और भूमिया जाति की तुलना[1] से यह बात स्पष्ट होगी कि भूमिया जाति ही आगे चलकर बंजारा कहलायी ।

बंजारा जनजाति का उल्लेख बंजरंग लाल लोहिया के ग्रंथ में इस प्रकार है :--" जो बैलों की पीठ पर माल लादकर ले जाते, उन्हें बलदिया कहा जाता । इनका कोई स्थायी घर नहीं होता । वे निरन्तर चलते फिरते अपना जीवन व्यतीत करते ।"[2]

1- कैशव कुमार ठाकुर - टाड लिखित राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ-883, संस्करण 1965

2- बंजरंग लाल लोहिया - राजस्थान की जातियां , पृ0-167, सं0-1954

बलदिया लदेलिया शब्दों का प्रयोग भी बंजारा जनजाति में दिखायी देता है । "बैल को मालवी बोली में बलद कहा जाता है ।[1] " बैलों की पीठपर सामान लादकर ले जाने वाला लदेलिया कहलाया । बंजारा जनजाति के व्यापार के लिये लदेलीं शब्द का प्रयोग किया जाता है । बंजारे जब व्यापार के चल पड़ते तो उसे वे लदेंलीं कहते । वे सूत के धागों से बोरियां बुनते, उसे वे गुलीं कहते । इन बोरियों में सामान भरकर वे बैलों की पीठपर रखकर चल पड़ते । तात्पर्य यह कि बंजारा और बलदिया का एक ही अर्थ है । मराठी ग्रंथों में ऐसे संकेत मिलते हैं कि बंजारा प्राचीन काल में व्यापार करते । चिन्तामणि गणेश कर्वे के अनुसार " प्राचीन काला पासुन बैलाचे तांड्या तांडे माल भरुन निकत असत अनेक सौदागर एकमेकाना साथ करीत "[2] जब वे व्यापार के लिए निकल पड़ते तो रास्ते के लिये अपनी सारी व्यवस्था वे साथ रखते - जैसे खाना-पीना, सुरक्षा आदि का प्रबन्ध । सुरक्षा करनेवाले कुत्ते भी वे पालते । महाराष्ट्र गांव-व्यवस्था के संदर्भ में त्रिम्बक नारायण आत्रे ने बंजारा जनजाति का उल्लेख किया है । इनके शब्दों में लमान बंजारा पूर्वी बैलाचे तांडे घेऊन मीठ सरपन याची ने आण करीत ।"[3] तात्पर्य जीवन व्यवस्था के लिए बंजारों का व्यापार आवश्यक था ।

जंगल और पहाड़ी रास्तों से बनजारे व्यापार करते । सारे प्रांतों के रास्ते इन्हें मालूम थे । उस समय यातायात की और कोई सुविधा नहीं थी । इसीलिए बंजारा जनजाति का व्यापार ही का एकमात्र साधन था । एम० एल० शर्मा के शब्दों में "रेलगाड़ियों के चलने के पहले व्यावसायिक वस्तुओं के ले जाने का धन्धा मुख्यत: बंजारे करते ।[4] तात्पर्य बंजारा जनजाति प्राचीन काल से अंग्रेजों के आने तक व्यापार करती रही ।

1- डा० श्याम परमार " लोक साहित्य विमर्श, पृ०-147, सं०-1972

2- चि० ग० कर्वे "महाराष्ट्र परिचय "- पृ०-628, संस्करण-1954

3- त्रि० ना आत्रे- गावगाडा - पृ०-83, संस्करण 1915

4- एम० एल० शर्मा "राजस्थान " पृष्ठ-17, संस्करण-जुलाई 1973

मुगल काल में बंजारा जनजाति ने व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । माल लादने के लिये वे अधिक से अधिक बैल पालते जिसके पास अधिक बैल होते वह व्यापारी बड़ा समझा जाता । के० एम० अशरफ के अनुसार - "बंजारा नामक पुराने व्यापारी वर्ग के पास लाखों बैल थे । उनके कुछ काफिलों में तो 40000 बैल तक थे ।"[1] बंजारा जनजाति का वैसा कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है । प्राचीन काल से व्यापार करनेवाली यह जमात मुगल समय में अधिक परिचित हुई । बंजारा शब्द का भी प्रयोग स्पष्ट रूप से हमें मुगल काल से ही दिखायी देता है ।

व्यापार के साथ सामान लादकर ले जाने का काम भी वे करते थे । मुगलों के जमाने में जब फौज राजस्थान के रास्ते गुजरात की ओर बढ़ती थी तो इन बंजारों को रसद पहुंचाने का काम भी दिया जाता था । इनकी आवश्यकता के बारे में धर्मपाल कहते हैं । " उस जमाने के इतिहास से पता चलता है कि कितनी बार तो मुगल फौजों को सिर्फ इसलिये रुक जाना पड़ा था, कि काफी संख्या में बनजारे मिल नहीं रहे थे ।"[2]

प्राचीन काल से बंजारा जनजाति आवश्यकता देखकर इस प्रांत से उस प्रांत तक ही माल नहीं पहुंचाती थी बल्कि वह विदेशों में भी माल लेकर जाती थी । तात्पर्य यह कि इनका व्यापार केवल अपने ही देश तक सीमित नहीं था । अपने पड़ोसी देशों में भी वे व्यापार करते थे । हिन्दुस्तान के निवासियों के जीवन का वर्णन करते समय के० एम० अशरफ कहते हैं - "भारत की मुख्य भूमि के साथ मध्य एशिया, अफगानिस्तान फारस से मुल्तान क्वेटा लेकर दरों से व्यापारियों के काफिलें इन रास्तों से परिचित थे ।"[3]

1- के० एम० अशरफ-हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन , अनुवादक : डा० के० एस० लाल - पृ०-141, संस्करण 1969

2- धर्मपाल राजस्थान " पृष्ठ-40, संस्करण जनवरी 1970 हिन्दी अनुवाद - सुमंगल प्रकाश ।

यह प्राचीन परम्परा देखकर शब्दकोश में भी बनजारा शब्द का यह अर्थ दिया गया है -'बंजारा जो बैलों की पीठ पर अनाज लादकर बेचने के लिये ले जाय वह बनजारा'[1]। इतिहास और शब्दकोश में बंजारा जनजाति के संकेत मिलते हैं। इस जनजाति का प्रथम इतिहास मराठी में बली राम पटेल ने लिखा, जिसमें कहा गया है कि यह प्राचीन काल से व्यापार करनेवाली जाति मूलत: राजपूत या क्षत्रिय थी। आगे चलकर व्यापार के लिये एक गुट राजपूतों से अलग हुआ।[2] बली राम पटेल ने बंजारा जाति को रजपूत सिद्ध करने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष यह है कि बंजारा जनजाति का इतिहास प्राचीन काल से आजतक इस जनजाति के बारे में जो लिखा गया है, वही उपलब्ध है। वास्तव में बंजारा जनजाति का संपूर्ण इतिहास उपलब्ध नहीं है। इनका मूल स्थान, वंशावली, गोत्र, भाषा आदि के बारे में अधिक खोज की आवश्यकता है। इस जनजाति के इतिहास, उसके उद्गम तथा विकास के ज्ञान के लिये एक महत्त्वपूर्ण साधन इनका लोकसाहित्य है।

(ख) लोकसाहित्य की परम्परा

लोक साहित्य की प्राचीनता का शोध इतिहास की दृष्टि से असंभव माना गया है। जबसे मनुष्य का जीवन व्यवहार धरती पर प्रारंभ हुआ उतनी ही पुरानी परम्परा लोक साहित्य की मानी गयी है। लोक-साहित्य में लोक और साहित्य दो शब्द हैं। लोक का अर्थ सर्वसामान्य जनता लिया जाता है। सर्व सामान्य जनता का साहित्य लोक-साहित्य

3- के० एम० अशरफ-हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और परिस्थितियां : हिन्दी अनुवाद : डा० के०एस० लाल, पृ०-146,सं०-1969

1- संपादक: कालिका प्रसाद : वृहत् हिन्दी शब्दकोश : पृ०-946, संस्करण : जेष्ठ संवत 2020

2- बली राम पटेल : 'गोर बंजारे लोकाचा इतिहास, पृ०-54, सं०-1939

है । इसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए सीताराम लालस कहते हैं । " इस भूभाग पर रहनेवाला वह जन-समुदाय जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर अपनी पुरातन सभ्यता को प्रवाहमान करता हुआ जीवन निर्वाह करता है वह लोक कहलाता है । इन्हीं लोगों का साहित्य लोकसाहित्य ।"[1] तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य मनुष्य के उठनेवाली अकृत्रिम भाव लहरों की मौखिक अभिव्यक्ति है ।

जब से लोक साहित्य का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से होने लगा, तबसे लोक साहित्य और लोक वार्ता शब्द लोक संस्कृति को व्यक्त करने के लिये प्रचलित हुए । लोक-वार्ता वैसे अंग्रेजी Folk Lore शब्द के ढंग पर बना है । लोक वार्ता का प्रमुख तत्व परम्परा है । जो बातें हमें परम्परा से प्राप्त होती हैं उनका समुच्चय ही लोकवार्ता है, जिसे कुछ विद्वान लोकतत्व भी कहते हैं । इस लोकवार्ता की परम्परा को स्पष्ट करते हुए ज० हाण्डू कहते हैं -" कि इस परम्परा में मानस अथवा लोक की अभिव्यक्ति होना अनिवार्य है । लोक-साहित्य लोकवार्ता का एक अभिन्न अंग है, जो लोक संस्कृति को पूर्णता से प्रगट करता है ।"[2] लोकवार्ता में लोक साहित्य, लोकविज्ञान लोकभाषा एवं लोक चेष्टायें आदि का अध्ययन होता है । लोक साहित्य में लोकगाथा, कथा गीत, लोक-नाटक एवं पौराणिक काव्य आदि का अध्ययन होता है ।

लोकवार्ता तथा लोकसाहित्य द्वारा लोक संस्कृति का अध्ययन किया जा सकता है । लोकवार्ता तथा लोकसाहित्य मानव सभ्यता के आदिकाल से स्पष्ट-अस्पष्ट रूप में चले आ रहे हैं । इनमें मानवीय जीवन के सारे संकेत तथा धारणाएं प्रगट होती हैं ।

1- सीताराम लालस "राजस्थानी शब्दकोश" : पृ०-202, सं०-1961

2- जवाहर लाल हाण्डू -कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत एक तुलनात्मक अध्ययन : पृ०-2, संस्करण-1971 ।

लोक साहित्य की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतान्तर है। लोक-साहित्य की उत्पत्ति तथा निर्मिति कैसे हुई होगी, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। कथागीतों की उत्पत्ति के कारण समूहवाद व्यक्तिवाद, विकासवाद, व्यक्तित्वहीनवाद, समन्वयवाद, आदिवाद माने गये हैं जिनकी विस्तृत चर्चा मराठी के लेखक डा० प्रभाकर माचे ने की है।[1]

एक मत है कि लोक साहित्य की रचना व्यक्ति द्वारा होती है तो दूसरा मत है कि लोक साहित्य की उत्पत्ति समूह द्वारा होती है। भाषा उत्पत्ति के बारे में जिस प्रकार अनेक वाद हैं, उसी तरह लोक साहित्य की उत्पत्ति के बारे में भी हैं। जैकब ग्रिम तथा एफ० बी० गुमर समूह द्वारा निर्मिति मानते हैं। व्यक्ति द्वारा उत्पत्ति ए० डब्लू० श्लेगल मानते हैं।[2]

मेरा विचार है कि लोक साहित्य की रचना किसी न किसी व्यक्ति द्वारा ही हुई है। वह व्यक्ति अज्ञात है। मनुष्य चाहे कितना ही अनपढ़ असंस्कृत क्यों न हो, उसकी अपनी प्रतिभा होती है। समाज में सब रहते हैं किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपनी प्रतिभा द्वारा समूह से भिन्न दिखायी देते हैं। ऐसे व्यक्ति द्वारा ही लोक साहित्य की रचना हुई होगी। उस समय प्रकाशन की व्यवस्था नहीं थी, और मनुष्य आज जैसा स्वयं केन्द्रित नहीं था। इसलिए अज्ञात व्यक्ति की रचना समूह की थाती बन जाती थी। साहित्य की प्राचीन परम्परा प्राय: मौखिक थी। अत: अज्ञात कवि की रचना मौखिक परम्परा के कारण सामूहिक रूप धारण कर लेती थी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोक साहित्य की रचना समूह नहीं करता, बल्कि व्यक्ति ही करता

1- प्रभाकर माचे - "लोकसाहित्याचे अंत: प्रवाह - पृ०-119-120, सं०-1975

2- वही - लोक साहित्याचे अंत: प्रवाह (मराठी): पृ०-119, सं०-1975

है । समूह या समाज द्वारा आचार की कृतियों का निर्माण हो सकता है, लोक साहित्य का नहीं, हां, समाज लोक साहित्य के प्रचार का एक बड़ा कारण होता है ।

लोक साहित्य में कुछ ऐसी विशेषतायें होती हैं जो उसे आज के परिनिष्ठित साहित्य से अलग करती है । लोक-साहित्य की प्रमुख विशेषता उसकी मौखिक परम्परा है । इसके अतिरिक्त लोकसाहित्य में आंचलिकता का गहरा रंग होता है, जिसे अंचल विशेष की संस्कृति, उसके रीति रिवाजों और स्थानीय आचारों एवं व्यवहारों की अभिव्यक्ति में देखा जा सकता है । लोक साहित्य की कुछ विशेषतायें डा० हाण्डू के शब्दों में इस प्रकार हैं :---

(1) लोकगीत संगीतात्मक रचना होती है ।
(2) लोकगीतों में लोक मानस की सहज एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति होती है ।
(3) लोकगीत मौखिक परम्परा में अविरत रहते हैं ।
(4) लोकगीतों का रचयिता प्राय: अज्ञात होता है ।
(5) लोकगीतों में प्राय: लय का प्राधान्य रहता है ।
(6) लोकगीतों में प्राचीन मानव की सभ्यता एवं संस्कृति के चित्र अंकित रहते हैं ।[1]

डा० प्रभाकर माचे (मराठी के लेखक) ने लोक साहित्य की इन विशेषतायें बताई हैं ।[2]

लोकगीत तथा लोकगाथायें प्राय: पाठान्तर द्वारा सुरक्षित रहती हैं । इसीलिए छोटी छोटी पंक्तियां और लय बद्धता लोकसाहित्य की विशेषतायें रही हैं । लोक साहित्य मनुष्य जीवन के परिवर्तन के साथ बदलता हुआ दिखायी

1- डा० जवाहर लाल हाण्डू 'कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत - एक तुलनात्मक अध्ययन' पृष्ठ- 19, संस्करण 1971

2- डा० प्रभाकर माचे : लोक साहित्याचे अंत: प्रवाह , पृ०-41, सं०-1975

देता है । उसका प्रेरणा-स्त्रोत लोक-साहित्य है । डा० श्याम परमार ने लोकसाहित्य में होने वाले परिवर्तन के निम्न कारण बताये हैं :---
(1) मूलकल्पन (2) अपनी ओर से हेर-फेर की प्रवृत्ति (3) अन्य गीतों का संपर्क ।[1]

लोकसाहित्य के अध्ययन के लिये उसका वर्गीकरण आवश्यक है । इसलिये लोकसाहित्य का वर्गीकरण मोटे तौर पर डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इस प्रकार किया है :---

(1) लोक गीत
(2) लोकगाथा
(3) लोक-कथा
(4) लोक नाट्य
(5) लोक सुभाषित [2]

आगे चलकर लोक साहित्य के विभिन्न भेदों का अध्ययन प्रारंभ हुआ । आज लोकगीत के प्रकार, लोकगाथा के प्रकार, लोक-कथा के प्रकार लोक नाट्य तथा लोक सुभाषित का विशेष अध्ययन हो रहा है ।

17 वीं शती विज्ञान की उन्नति की शती है । अत: वैज्ञानिक दृष्टि ने मनुष्य के सारे भाव संकेतों को मुड़कर देखने के लिये बाध्य किया । मानव साहित्य तथा शास्त्र को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने लगा । लोकगीत जो उसके कण्ठ में परम्परागत रूप से सुरक्षित थे । उसके प्रति भी, उसकी नवीन जिज्ञासा जाग्रत हुई । इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर मानव लोकसाहित्य का अध्ययन करने लगा ।

सतरहवीं शताब्दी में यूरोप में ने पहले पहल

1- डा० श्याम परमार 'लोक साहित्य विमर्श' पृ०-7, सं०-1972
2- डा० कृष्णदेव उपाध्याय : लोक साहित्य की भूमिका' पृ०-60, संस्करण द्वितिय -1970

लोकसाहित्य के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रगट की, और लोकसाहित्य की परम्परा की सौज़ की । आगे चलकर लोक साहित्य का विशेष अध्ययन ग्रिम बंधुओं ने किया । ग्रिम बंधुओं ने लोकसाहित्य का संग्रह ही नहीं किया बल्कि जर्मन भाषा और धर्मगाथाओं पर भी अपनी कलम चलाई ।[1]

एक अन्य विद्वान " को पुरानी वस्तुओं के संग्रह का शौक था । लोक साहित्य का भी विशेष अध्ययन इन्होंने किया । भारतीय लोकसाहित्य का प्रथम संकलन ने नामक पुस्तक में (1892 में प्रकाशित) किया । बाद में 1868 में लोक कथा मिस मैरी फिसर ने प्रकाशित की ।[2]

लोकसाहित्य के अध्ययन की परम्परा भारतीय भाषाओं में भी चला । हिन्दी में सबसे पहले श्री मन्नन द्विवेदी ने "सतारीया " नामक गोरखपुर जिले के गीतों का एक छोटा-सा संग्रह 1913 में प्रकाशित कराया ।[3] बंगाली में का अनुवाद लाल विहारी ने 1885 में किया । इसके बाद श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर ने नारी गीत तथा बालगीतों का संग्रह किया ।[4] रवीन्द्र नाथ टैगोर भारतीय स्तर पर विशेष रूप से लोकसाहित्य का अध्ययन करने वाले प्रथम भारतीय रहे हैं । हिन्दी में रामनरेश त्रिपाठी ने उत्तर प्रदेश पंजाब गुजरात घूमकर 1928 में "कविता कौमुदी-भाग-5 " में अनेक प्रदेशों के लोकगीत प्रकाशित किये । ब्रज संस्कृति का इतिहास प्रभुदयाल मीचल ने लिखा ।

1- डा० कुलदीप - लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन : पृ०-38, सं०-1972

2- दयाशंकर शुक्ल - छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन :पृ०-28, सं० प्र० 1969 ।

3- -वही- ,, ,,, ,, पृ०-28, सं०-1969

4- रवीन्द्र नाथ टैगोर: लोकसाहित्य " पृ०-4, सं०-167
अनुवाद- दुर्गाभागवत (मराठी)

लोकसाहित्य के प्रति रुचि रखनेवाले डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने "लोक साहित्य की भूमिका" लिखी । डा० कृष्ण चंद्र शर्मा ने कुरु प्रदेश के लोकगीतों का अध्ययन किया । तुलनात्मक दृष्टि से डा० जवाहरलाल हाण्डू ने काश्मीरी लोकगीत और हिन्दी लोकगीतों का, अध्ययन किया । श्यामपरमार ने "लोकसाहित्य : विमर्श" नामक निबन्ध संग्रह प्रकाशित कराया । डा० सत्येन्द्र ने भी लोकसाहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन किया । मराठी में दुर्गा भागवत, साने गुरुजी सरोज की बप्पर डा० प्रभाकर माचे आदि ने लोक साहित्य पर काम किया । विशेष अध्ययन के लिये विभिन्न संस्थायें स्थापित की गई । व्यक्तिगत रूप में लोक साहित्य का संकलन कठिन है । इसी लिए संस्थायें इस दिशा में संकलन तथा शोध का कार्य कर रहीं हैं । ऐसी संस्थाओं में ये उल्लेखनीय हैं --- ब्रजभाषा साहित्य मण्डल, गढ़वाली साहित्य परिषद्, लोकवार्ता परिषद्, भोजपुरी लोक साहित्य परिषद्, मालवा लोक साहित्य परिषद् ।"[1] संस्थाओं की अपनी मर्यादा-यें होती हैं । इसी लिए इस क्षेत्र में अनेक शोधार्थियों को भी व्यक्तिगत रूप में अथक परिश्रम करना पड़ेगा ।

लोकसाहित्य का अध्ययन तथा शोध अन्त में भारतीय साहित्य और लोकजीवन को सम्पन्न बनायेगा । जबसे लोक साहित्य का अध्ययन प्रारंभ हुआ तब से हम देखते हैं कि उसके परिणाम-शिष्ट साहित्य में भी दिखायी देने लगे हैं । डा० श्याम परमार कहते हैं - "नया कवि इस प्राणदायिनी लोक शक्ति के ऋण को स्वीकार करने में गौरव अनुभव करता है, और इस स्वीकृति से उसे बार - बार पुनर्जीवन मिलता है ।"[2]

(ग) बंजारा लोकसाहित्य परम्परा, और क्षेत्र

बंजारा लोकसाहित्य की परम्परा निर्धारित करना कठिन कार्य है ।

1- दयाशंकर शुक्ल - छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य का अध्ययन" -पृ०-88, सं०-1969

2- डा० श्याम परमार "लोकसाहित्य विमर्श" : पृ०-4, सं०-1972

जितनी प्राचीन यह जनजाति है उतनी ही पुरानी परम्परा बंजारा लोक साहित्य की है । दयाशंकर शुक्ल कहते हैं -"किसी भी राष्ट्र की जातीय, सामाजिक, धार्मिक राष्ट्रीय आर्थिक एवं ऐतिहासिक विशेषताएं वहां के लोकसाहित्य में निहित होती हैं ।"[1] बंजारा एक जनजाति है, इसलिए इसकी कहानी इसके लोक साहित्य में निहित है । वीर राजेन्द्र अग्नि लिखते हैं - "संसार में न केवल सर्वप्रथम पुस्तक प्रकाशित होने से पहले बल्कि लिपियों के लक्षणों के प्रादुर्भाव से भी कई शताब्दियों पहले पृथ्वी पर बसने वाले लोकगीत कथा तथा नृत्य जानते थे ।"[2] तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य की परम्परा मनुष्य के जीवन के साथ ही जुड़ी हुई है । बंजारा जनजाति का मूल स्थान राजस्थान रहा है । राजस्थानी लोक साहित्य जितना प्राचीन है, उतनी ही प्राचीन परम्परा बंजारा लोकसाहित्य की हो सकती है ।

उत्तर भारत से दक्षिण भारत में बंजारा जनजाति 18 वीं शताब्दी में आयी । शाहजहां के वजीर आसफखान रसद के काम के लिये बंजारा जाति के कुल ताडे (काफिले) दक्षिण में लेकर आये थे । बलीराम पटेल कहते हैं बंजारों का बहुत बड़ा तांडा जंगी मंगी, भगवान दास लेकर आये जिनके बैलों की संख्या जंगी के पास 18000 बैल तथा भगवान दास के पास 52000 बैल थे ।[3] तात्पर्य यह कि महाराष्ट्र में बंजारा जनजाति 16 वीं शताब्दी में आयी और रसद पहुंचाने तथा व्यापार का काम करने लगी । महाराष्ट्र से मालवा -दिल्ली तक व्यापार के लिये वे जाते थे ।

धौले देवलेती तांडो लादो
देश मालवा माया चालो[4]

1- दयाशंकर शुक्ल "छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य का अध्ययन : पृ०-११, सं०-1969
2- वीर राजेन्द्र अग्नि, "स्त्री लोक साहित्य" : पृ०-1, सं०-1956
3- बलीराम पटेल "गौर बंजारे लोकाचा इतिहास (मराठी), पृ०-54, सं०-1936
4- आत्माराम राठोड - श्री संतसेवादास लीलाचरित्र (मराठी)
पृष्ठ- 32, संस्करण 1973

अंग्रेज आये, रेल आयी, और इनका पारंपरिक व्यापार समाप्त हुआ। जहां साहे थे, वहां वे रुक गये। महाराष्ट्र में बंजारा जनजाति पन्द्रह बीस लाख के आसपास है। बंजारा लोकसाहित्य की दृष्टि से महाराष्ट्र के तीन विभाग किये जा सकते हैं : (क) मराठवाड़ा क्षेत्र का लोक साहित्य (ख) विदर्भ क्षेत्र का लोकसाहित्य (ग) खानदेश क्षेत्र का लोक-साहित्य।

महाराष्ट्र में बंजारा जनजाति उक्त तीन क्षेत्रों में आज भी बसी हुई तथा घूमती हुई दिखायी देती है। इसलिये बंजारा लोकसाहित्य को उक्त तीन विभागों में बांटा जा सकता है।

(क) मराठवाड़ा क्षेत्र का लोक साहित्य : मराठवाड़ा सन् 1960 के पहले हैदराबाद के निज़ाम के राज्य में था। ऐतिहासिक दृष्टि से बंजारा जनजाति कर्नाटक तथा आंध्र प्रांत में पहले आयी। बंजारा लोकसाहित्य में ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे बंजारा जाति के मराठवाड़ा में आने का पता चलता है। डी० आर० प्रताप ने त्यौहार तथा संस्कार गीत संग्रहीत किये हैं जिन पर मराठवाड़ा क्षेत्र का प्रभाव दिखायी देता है।* मराठवाड़ा क्षेत्र में ये छः जिले हैं जिनमे से परभणी नांदेड और औरंगाबाद के जिलों में बंजारा जनजाति अधिक दिखायी देती है। यहां के लोक साहित्य में मराठी तथा उर्दू भाषा का प्रभाव मिलता है। प्राचीन लोकसाहित्य के साथ आजकल लोग लोकगीत जैसे गीत भी गाते हैं। संत ईश्वरसिंह महाराज के धार्मिक गीत मराठवाड़ा क्षेत्र में अधिक गाये जाते हैं। त्यौहार रीतिरिवाज और परम्परा में कोई अंतर दिखायी नहीं देता। आल्हा-ऊदल के भी गीत मराठवाड़ा में गाये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि मराठवाड़ा क्षेत्र में बंजारा लोकसाहित्य की सारी विधायें दिखायी देती हैं।

(ख) विदर्भ क्षेत्र का लोक-साहित्य : महाराष्ट्र में विदर्भ क्षेत्र बंजारा जनजाति के लिये एक सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। विदर्भ क्षेत्र में यवतमाल, अकोला, अमरावती

---

*

जिलों में बंजारा जनजाति अधिक दिखायी देती है । अजन्ता तथा विंध्य पर्वत की जो शाखायें हैं, उसके आस-पास आज बहुत से बंजारे बसे हुए दिखायी देते हैं ।

विदर्भ क्षेत्र के कुल जिले पहले मध्यप्रदेश प्रांत में थे जिसके कारण इन जिलों के बंजारों की भाषा, रहन-सहन आदि पर मध्य प्रदेशीय प्रभाव मिलता है । धार्मिक गीतों की परम्परा बंजारा लोकसाहित्य में विदर्भ क्षेत्र से प्रारंभ हुई है । विदर्भ क्षेत्र में सेवाभाया नामक प्रसिद्ध संत हुये थे । इनकी परम्परा आज तक चले आ रही है । सेवाभाया की जीवन कहानी आज भी लोकगाथा के रूप बंजारा लोग गाते हैं । विदर्भ क्षेत्र में आज भी हजारों भजन मण्डलियां दिखायी देती हैं । अत: बंजारा लोकसाहित्य में धार्मिक गीतों की परम्परा विदर्भ क्षेत्र की देन है ।

(ग) खानदेश का लोकसाहित्य : खानदेश में विशेष रूप से बंजारा जनजाति चालीसगांव तहसील जलगांव धुलिया आदि जिलों में दिखायी देती है । मध्य प्रदेश नज़दीक होने के नाते हिन्दी भाषा का प्रभाव खानदेश के लोक साहित्य पर अधिक दिखायी देता है । प्राचीन रीतिरिवाज तथा परम्परा को जोड़ना खानदेश के बंजारे मानो आज भी अधर्म समझते हैं । सेवाभाया के गीत के साथ, आल्हा ऊदल की गाथा मौखिक रूप में आज भी इस क्षेत्र में गायी जाती है ।

अत: मराठवाड़ा, विदर्भ तथा खानदेश के साथ पश्चिमी महाराष्ट्र में शोलापुर जिले बंजारा जाति के तांडे (बस्ती) दिखायी देते हैं । मोटे तौर पर महाराष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों का लोकसाहित्य मूलत: एक ही है । प्राचीन परम्परा तथा संकेत रूढ़ियां, धारणाएं एक जैसी हैं । भाषा की दृष्टि से उच्चारण में थोड़ा सा अंतर अवश्य दिखायी देता है ।

दूसरा अध्याय

महाराष्ट्र के बंजारा लोकसाहित्य का वर्गीकरण

महाराष्ट्र के बंजारा जनजाति का प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध न होने के कारण इसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के अध्ययन का एकमात्र स्त्रोत लोकसाहित्य रहा है । लोक-साहित्य के व्यवस्थित अध्ययन के लिये उसका वर्गीकरण आवश्यक बन जाता है । लोकसाहित्य का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है । एक रूप के आधार पर दूसरे भौगोलिकता के आधार पर । लोकसाहित्य के रूप को आधार मानकर डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार से किया है ।

(1) लोक गीत
(2) लोकगाथा
(3) लोक कथा
(4) लोक नाट्य
(5) लोक सुभाषित[1]

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य के रूप को आधार बनाकर वर्गीकरण किया है, वह सर्वमान्य रूप में स्वीकारा गया है ।

भौगोलिकता के आधार पर इस प्रकार लोकसाहित्य का वर्गीकरण किया जा सकता है :

(1) ग्रामीण क्षेत्र का लोक साहित्य
(2) जंगली पहाड़ी आदिम जातियों का लोक साहित्य

1- डा० कृष्णदेव उपाध्याय : 'लोक साहित्य की भूमिका' : पृ०-60 द्वितीय संस्करण 1970

(3) घुमक्कड़-जनजातियों के लोक साहित्य में भौगोलिक परिवेश के कारण मनुष्य की जीवन पद्धति में अनेक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। दौत्रीय वातावरण जलवायु आदि का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर दिखायी देता है। जब हम लोक-साहित्य और सामाजिक जीवन का अध्ययन करते हैं तो भौगोलिकता को नकार नहीं सकते। विशेष रूप से आदिम जातियों के लोक साहित्य का अध्ययन जब करते हैं तो भौगोलिकता को अधिक महत्व दिया जाता है। डा० त्रिलोचन पाण्डेय आदिम जनजातियों के लोकसाहित्य के प्रति कहते हैं।

"भारतीय जनजातियों अथवा आदिम समाजों की संस्कृति लोक परम्परा से भिन्न समझनी चाहिए क्योंकि वह इतिहास प्रवाह में प्राय: आत्मनिर्भर रही है, तथा अपेक्षाकृत स्वत: विकसित हुयी है।"[1]

तात्पर्य आदिम जातियों के लोक साहित्य के अध्ययन के लिये तथा वर्गीकरण के लिए जिस स्थल पर वे रहते हैं, उसके महत्व को नकार नहीं सकते।

(1) ग्रामीण दौत्र का लोक साहित्य : जबलोक साहित्य का अध्ययन प्रारंभ हुआ तब ग्रामीण -साहित्य को ही लोक साहित्य समझा गया। रवीन्द्र नाथ टैगौर तथा हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं कवि रामनरेश त्रिपाठी ने सन् 1928 में कविता कौमुदी " नाम से ग्राम्य-गीत प्रकाशित किये। ग्रामीण जन-जीवन नगरीय तथा महानगरीय संस्कृति से दूर है। आज भी प्राचीन जीवन मूल्यों के संकेत ग्रामीण संस्कृति में दिखायी देते हैं। भौगोलिकता के आधार पर हर गांव तथा दौत्र की अपनी एक परम्परा होती है, अपनी एक बोली होती है और कुछ स्थानीय रूढ़ियां और धारणाएं होती हैं। भौगोलिकता के आधार पर हर ग्रामीण दौत्र में अपने देवी-देवता होते हैं। गांव वाले कभी पहाड़ी की पूजा करते हैं। नदी-नाले उन्हें विशेष पवित्र लगते हैं। तात्पर्य

1- डा० त्रिलोचन पाण्डेय : लोक साहित्य का अध्ययन, पृ०-158, संस्करण : 1978

यह है कि उन लोगों की अलग ग्रामीण संस्कृति होती है और उस संस्कृति का चित्र हमें ग्रामीण तथा क्षेत्रीय लोक साहित्य में दिखायी देता है ।

(2) जंगली पहाड़ी आदिम जातियों का साहित्य : भारत वर्ष में आज भी आदिम जातियां जंगलों और पहाड़ियों के गोद में बसी हुई हैं । ग्रामीण संस्कृति से भी वे दूर हैं । अपने ढंग से हजारों साल से वे जीते आ रहे हैं । जंगली पहाड़ी जातियों के लोक साहित्य के अध्ययन की आज भी आवश्यकता है । गोंड, भील आदिवासी लोगों का साहित्य, लोकसाहित्य के अध्ययन के लिये एक नयी दिशा दे सकता है । जंगली-पहाड़ी आदिम जातियों के लोक साहित्य का अध्ययन तथा शोध करना एक कठिन कार्य है । प्राचीन जीवन-मूल्यों के संकेत हमें इनके लोक साहित्य तथा बोलियों में दिखायी देते हैं । भौगोलिकता के आधार पर आदिम जातियों के लोक साहित्य का ऐसा ही वर्गीकरण आगे चलकर किया जा सकता है ।

(3) घुम्मकड़ जन जातियों का लोक साहित्य : विशिष्ट गांव तथा क्षेत्र में रहने वाली जातियों का लोक साहित्य आज उपलब्ध है । परन्तु घुम्मकड़ जातियों के लोक साहित्य का अध्ययन तथा शोध सरल कार्य नहीं है । ये जातियां एक जगह रुकती ही नहीं । भारत जैसे देश में आज कितनी ऐसी जातियां है जो पूरे देश में घूमती हुई भी अपने आप में सीमित हैं । "महाराष्ट्र में ऐसी चालीस वन्य-जातियां हैं, जो घुम्मकड़ हैं ।"[1] जिनकी अपनी स्वतंत्र बोली है, अपनी धार्मिक सांस्कृतिक परम्परा है और अपनी स्वतंत्र वेशभूषा है । सारे देश में घूमने वाली इन जातियों के लोक साहित्य का अध्ययन आज हमारे सामने एक चुनौती है । अन्य प्रांतीय भाषाओं तथा संस्कृति के प्रभाव इनके लोक साहित्य में दिखायी देते हैं । सारे देश में घूमने पर भी इनमें परिवर्तन क्यों नहीं हो पाया, इसका कारण इनके लोक साहित्य में ही ढूंढा जा सकता है ।

1- त्र्यम्बक नारायण आत्रे : गावगाड़ा (मराठी) : पृ०-21, सं०-1415

बंजारा जनजाति आज कल महाराष्ट्र में तीन रूपों में दिखायी देती है। (1) घुम्मकड़ (2) अर्द्ध घुम्मकड़ (3) स्थायी रूप में निवास करने वाली। इस जाति के लोग अपनी प्राचीन संस्कृति, अपनी परम्परा और सभ्यता से गहरा लगाव अनुभव करते हैं। इसलिए वे दूसरी जातियों से दूर रहना पसन्द करते हैं। महाराष्ट्र के अनेक क्षेत्रों के सर्वेक्षण तथा अनेक लोगों से भेंटवार्ता के बाद मेरा विचार है कि बंजारा लोक साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—

(1) लोक गीत :

(क) संस्कार गीत , (ख) त्यौहार गीत
(ग) नारी गीत , (घ) शिशु गीत

(2) लोक कथा :

(क) मनोरंजक कथायें (ख) पशुपक्षियों की कथायें
(ग) राक्षसों की कथायें (घ) राजा-रानी की कथायें

(3) लोग गाथा :

(क) धार्मिक (ख) ऐतिहासिक

(4) लोकोक्तियां :

(क) स्थानीय (ख) सर्व प्रचलित

लोक साहित्य में लोक गीत प्राय: जन समूह द्वारा गये जाते हैं। जो प्राचीन काल से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप में चले आते हैं। इसका निर्माता अज्ञात होता है। इस अज्ञात व्यक्ति द्वारा रचित लोक गीत जनता के गीत बन जाते हैं। लोकगीतों पर व्यक्तिगत रूप में किसी का अधिकार नहीं होता। उस पर जनता का अधिकार हो जाता है। इसमें प्राय: छोटी-छोटी पंक्तियां

होती है, और कदम कदम पर पुनरावृत्ति दिखायी देती है । इसका कारण यही है कि प्राचीन काल में लोकगीत को सुरक्षित स्थान मनुष्य का कण्ठ ही था । पाठान्तर के कारण शब्दों का हेर-फेर होना स्वाभाविक है । लोक-गीत गेयात्मक होते हैं । लोकगीत विशिष्ट वारों पर गाये जाते थे । जो वार उस काल में उपलब्ध थे । इसका आनन्द उस कालीन वारों से ही मिलता है । आधुनिक वारों पर लोकगीत गाये नहीं जाते । इसके प्रति डा० मनोहर शर्मा कहते हैं - 'शास्त्रीय संगीत आयोजन की चीज़ है, और उसका अपना अलग महत्व है । परन्तु लोक-संगीत लोक हृदय की उमंग का स्वाभाविक प्रकाशन है' तात्पर्य लोक गीत तथा उसका लोक संगीत जनता की अपनी वाणी है ।[1]

लोक कथा-लोक कथा की परम्परा लोक गीतों जितनी ही प्राचीन है । लोक गीत और लोक कथा में सामान्य रूप से इस प्रकार की साम्यता और अंतर होता है । लोकगीतों का रचयिता अज्ञात होता है, उसी तरह लोक कथाओं का रचयिता भी अज्ञात होता है । मौखिक परम्परा से समाज में लोक गीत लोककथा गत्यात्मक होती है । लोकगीत छोटे छोटे होते हैं लोक कथायें छोटी और दीर्घ भी होती है । लोकगीत को संगीत की आवश्यकता होती है तो लोक कथा को सुननेवालों की आवश्यकता होती है । लोक गीत बैठकर तथा नृत्य द्वारा गया जाता है । लोक कथा प्राय: बैठकर ही सुनाई जाती है ।

लोक गाथा - लोक कथा और लोक गाथा में अंतर दिखायी देता है । लोक कथा से लोक गाथा दीर्घ होती है । लोक कथा को संगीत की आवश्यकता नहीं होती , लोक गाथा को संगीत की आवश्यकता होती है । लोक गाथा में आगे गाने वाला और उसे पीछे से उसे साथ देने वाले होते हैं । लोक-कथा में अकेला व्यक्ति कथा कहते रहता है । तात्पर्य लोकगीत, लोक-कथा तथा लोकगाथा में साम्यता तथा भिन्नता हमें दिखायी देती है । गीत कथा गाथा आदि प्राचीन काल से समाज के मनोरंजन के साथ हितोपदेश भी देते आ रहे हैं ।

लोकगीत - लोकगीत प्राय: जनसमूह द्वारा गाये जाते हैं । अपने दैन्यदिन

1- डा० मनोहर शर्मा : लोक साहित्य की सांस्कृतिक परंपरा पृ०-124, 1971

सुख-दुःख की भावनाओं को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम लोकगीत रहे हैं। मानव जीवन की कहानी लोकगीतों से व्यक्त होती है। जिसके माध्यम से मानव जीवन की प्राचीन रूढ़ियां तथा धारणायें हमारे सामने आती है। लोक गीतों की चर्चा पीछे मैंने की है। लोकगीतों के विभिन्न भेद तथा प्रकार माने गये हैं। इसलिए डा० चौधरी कहते हैं। लोक जीवन का काव्यमय इतिहास लोक गीतों में सुरक्षित है।[1]

लोकगीतों के विभिन्न प्रकार हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक गीतों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया है :

(1) संस्कार की दृष्टि से
(2) रसानुभूति की प्रणाली से
(3) ऋतुओं और व्रतों के क्रम से
(4) विभिन्न जातियों के प्रकार से
(5) क्रिया गीत की दृष्टि से
(6) विविध गीत -[2]

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY LIBRARY
DISS
O,155,1:g(Y,738)'N7
152MI

रामनरेश त्रिपाठी तथा डा० श्याम परमार ने भी लोक गीतों का वर्गीकरण किया है। उनमें सर्वसामान्य भेद एक जैसे ही माने गये हैं।

(क) संस्कार गीत : हिन्दू धर्म में सोलह संस्कार माने गये हैं। जन्मपूर्व तथा जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कार माने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जीवन के सारे संकेत संस्कारों द्वारा व्यक्त होते हैं। डा० सम्पति अर्यणी ठीक ही कहते हैं -- 'मानव जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं, जो लोकगीतों में व्यक्त नहीं हुआ। मानव के मातृगर्भ में स्थान पाने के साथ ही इन गीतों का

1- डा० एस० बी० चौधरी -लोक साहित्य और पावरी भाषा, पृष्ठ- 161, संस्करण 1978

2- डा० कृष्णदेव उपाध्याय 'लोक साहित्य की भूमिका' पृ०-26-27, द्वितीय संस्करण : 1970

TH- 983

आरंभ हो जाता है एवं अन्त उसकी मृत्यु के पश्चात् होता है ।"[1]

बंजारा जाति मूलत: हिन्दू होने के नाते उसमें हिन्दुओं के संस्कारों का प्रचलन है । इसके साथ ही आदिम तथा वन्यजाति होने के कारण इसके अपने कुछ संस्कार विकसित हुए हैं । विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाये जाने के कारण संस्कार गीतों के अनेक भेद किये जा सकते हैं, जिसका वर्णन आगे किया जायेगा ।

संस्कार गीत

(1) जन्म संस्कार गीत (2) बधाई संस्कार गीत

(3) ढूंढ संस्कार गीत (4) विवाह संस्कार गीत

(5) मृत्यु गीत

(1) जन्म संस्कार गीत : पारिवारिक जीवन में शिशु जन्म एक महत्वपूर्ण तथा आनन्दमयी घटना मानी जाती है । इस अवसर पर आनन्द व्यक्त करने के लिये, बंजारों में "आनंद वधावों" नामक जन्म संस्कार गीत गाया जाता है ।

तांडे में किसी के घर लड़का हुआ तो उस समय नगाड़ा बजाकर आनन्द व्यक्त किया जाता है । यदि लड़की हुई तो कासे की थाली बजायी जाती है । बंजारों में भी लड़की होना आनंददायक घटना नहीं मानी जाती । जन्म होते ही तांडे की वृद्ध अनुभवी नारियां उस घर जाकर यह लोकगीत गाती हैं ।

"वेईं माता मावली हरी भरी रकाल
वेईं माता वाछा हरो भरो रकाल ।
सुतली हेरो हेताणी वर आयेस
मूईं दोरा लेताणी घर जायेस ।।

1- डा० सम्पति अर्याणी "मगही भाषा और साहित्य" : पृ०-141, संस्करण : सन् 1976

यै धरती रै ठेसा आलंद वदावो
मलो जलमो यै केसरिया राजपूत

आलंद मनावो ----[1]

(2) ढुंढ संस्कार : बंजारा जनजाति में होली के समय ढुंढ संस्कार किया जाता है । होली के समय जिसके यहाँ लड़का हुआ है उसके यहाँ ढुंढ संस्कार होता है । उस दिन से लड़के की उम्र गिनी जाती है । उम्र होली की संख्या के अनुसार गिनी जाती है । प्रथम होली पर लड़के के घर ढुंढ संस्कार होता है । यह एक राजस्थानी परम्परा है । छोटे बच्चे को घर के सामने बिठाया जाता है , उसके चारों ओर पूरी तथा मिठाई रखी जाती है । उस समय आशीर्वाद के रूप में प्राय: यह लोकगीत गाया जाता है :---

चरीक चरीया चम्पा छै ज्यू-ज्यू चरायै लेरा छै ।
पैलो बेटा नाईं की करीयै, दुसरो बेटा कारभारी करीयै ।
तीसरो बेटा लादू चरावै, चवथो बेटा घोड़ू धरावै ।
पाचवो बेटा छैली चरावै । छोवो बेटा मां बाप पोसीय
सातवो बेटा सिकव शिकावच -----[2]

भावार्थ इस प्रकार है । बालक धीरे-धीरे बड़ा होता जाये । पहला बेटा नायक बनेगा, दूसरा बेटा कार्यभारी बनेगा , तीसरा बेटा पशु चरायेगा चौथा बेटा घोड़े पर बैठेगा, पांचवा बेटा बकरियाँ चरायेगा । छठा बेटा मां बाप को पालेगा । सातवा बेटा पढ़ेगा पढ़ायेगा,ज्ञानी बनेगा ।

1- इसका भावार्थ यह है :---

(क) देवी माता । जन्म देनेवाली मां की जिन्दगी हरी-भरी रख । उसका बालक हरा भरा रहने दे । लड़का हुआ तो सुतली और डेरा लेकर माता वापिस आ जा ।

लड़की हुई तो- माता सुई डोरा लेकर आप इधर आना नहीं, और कहीं जाना ।

इस प्रकार से गीत गाकर लोग आशीर्वाद के रूप में रुपया भेंट करते हैं ।

(3) बदाई संस्कार गीत : पुत्र के बड़े होने के बाद तथा विवाह के पहले बदाई नामक संस्कार बंजारा जनजाति में प्रचलित है । बदाई का अर्थ है उम्र बढ़ना या जीवन में प्रगति होना । जिस तरह ब्राह्मण जाति में जनेऊ संस्कार होता है, उसी प्रकार यह संस्कार इस जाति में होता है । शाम के समय स्त्री-पुरुष लड़के के घर इकट्ठे होते हैं । लड़के को स्नान करवा के घर के सामने बिठाया जाता है । उस समय तपी हुई सुई लेकर लड़के के बाहु पर दा ग लगाया जाता है । उसके साथ कान में छेद भी किये जाते हैं । इस समय अनुभवी लोग यह लोक गीत गाते हैं, जिसे गुरुमंत्र भी कहा जाता है :---

कोली आवे कोली जावे
कोली मांई जग समाव
धोलो घोड़ो हासलो पातलिया असवार ।
मुंगे आवला मोगरा तली आवड़ा बान ।
गुरु बाबा सदा सदा तू जाणं ।[1]

अपने घर में व्यापार करनेवाला रजपूत आया है । सब लोग आनंद मनाओ ।
(ख) यह गीत मैंने सों कला राठोड़ और वाली बाई राठोड़ के सौजन्य से टेप किया । लेखक ।
2- यह लोकगीत नानूसिंह जाधव ग्राम कन्नेर जि० औरंगाबाद, के सौजन्य से टेप किया । लेखक ।
1- इसका अर्थ इस प्रकार है :---
(क) बेटा ! तेरी दुनिया जंगल पहाड़ियों की खाई की तरह है । इसमें अनेक आये और समा गये हैं । तुझे गुरु बाबा का आशीर्वाद है । जीवन में तू सफल बन । सफेद घोड़ेपर बैठकर निश्चिंत रूप से तू इस जीवन की खाइयों में घूमता जा । किसी ने तुझ पर वार किया तो वह तुझे फूल के समान लगेगा । बेटा हमेशा अपने गुरु बाबा को याद करते रहना ।

(4) <u>मृत्यु गीत :</u> बंजारा जनजाति में मृत्यु गीत भी गाया जाता है। मृत्यु होते ही तांडे की वृद्ध अनुभवी तथा परिवार के लोग रोते हैं। उस समय नारियां रोते हुए इस प्रकार का गीत गाती हैं ---

सुतो छो क जाग रो छो
मारे नसाबी नायका
तांडो तो सुनो पाड़ चालो
नगरी रो नायका [1]

मरने पर कुंवारे व्यक्ति को जमीन में दफनाया जाता है और विवाहित को जलाया जाता है। जलाने की प्रक्रिया के बाद जिसके यहां मृत्यु हुई है, वहां लोग इकट्ठे होते हैं। तब नायक इस प्रकार से कहता है --

कैलावट छ। सामलो भाई। ये पालेभाई मोटदीन सराळं
लेन के सरीक पलाऊ ठलोच। आपले न भी औच
वाटेती जायर छ। आब रोवो रीको मत सासो धरो मत
कैलावट छ। रोयो मू धोयो गुवेन माटी जीवतेन बाटी। [2]

(ख) मोतीराज राठोड़ -बंजारा संस्कृति पृष्ठ-46, संस्करण 1976

1- भावार्थ इस प्रकार का है। तू सो गया है तो फिर कब उठेगा ? तांडे के न्यायी राजा, उठ जा। सारा तांडा सूना पड़ा हुआ है। नगरी के नायक तू उठ कर बैठ जा।

2- (क) इसका भावार्थ इस प्रकार है :
कहावत है भाई सब सुनो। इस पाल के अंदर बड़े-बड़े महाप्रतापी व्यक्ति भी होकर चले गये हैं। हमें भी उसी रास्ते से जाना है। अब रोवो मत सोचो मत। कहावत है जिन्दे को रोटी मरे हुये को मिट्टी।

(ख) आत्माराम राठोड़ - संत सेवादास लीला चरित्र (मराठी दीर्घ काव्य) पृष्ठ- 108, संस्करण - सन् 1973

(5) विवाह संस्कार गीत : बंजारा जनजाति में विवाह संस्कार के विभिन्न प्रकार होते हैं। प्राचीन काल में विवाह संस्कार धीरे-धीरे दो-दो महीनों तक चलते रहते थे। साही धार्णेर, छोटा छोलेर कान सकोई, गोल सायर, आदि संस्कार विवाह के पहले लड़के के यहाँ मनाये जाते हैं। तांडे को सार्वजनिक रूप में भोजन देने के बाद विवाह के लिये लड़का जाता है। लड़का तांडे में जाने के बाद छोटे-मोटे 36 संस्कार विवाह के समय होते हैं। जला धोकर, वकोल्ही धोकर होरनो बाधेर, मांड रमेर, चुली तिपेर, तांगड़ी का हेर आदि संस्कार विवाह के समय होते हैं। विवाह का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार सप्तपदी संस्कार माना जाता है। बंजारा जाति में मंगलाष्टक आदि गीत नहीं होते, किन्तु उस ढंग पर आधारित वेहा फरायेर नामक संस्कार होता है। पुरोहित के स्थान पर वहतीया नामक कुलवंश का व्यक्ति उपस्थित रहता है। इस संस्कार से संबंधित एक लोकगीत इस प्रकार का है।

एक वेहा फरल, लाज बेटी पंचुरी
दो वेहा फरल, लाज बेटी मां बापूरी।
तीन वेहा फरल, लाज बेटी बेन भाई री ॥
चार वेहा फरल लाज नणंद भोजायी री
पाच वेहा फरल बेटी जोरु तमारी।
छो वेहा फरल लाज तमारी
सात वेहा फरल येतदू बेटी रो ये [1]

इस तरह से लड़का आगे और लड़की उसके पीछे होकर सात फेरे घूमते हैं।

1- (क) इसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार हो सकता है। पहला फेर फिरले, तू बेटी पंचों की है, लाज पंचों की है। दूसरा फेर फिरले, तू बेटी, मां बाप की है। तीसरा फेर फिरले तू बेटी, भाई बहन की है। चौथा फेर फिरले तू बेटी, ननद भाभी की है। पांचवा फेर फिरले तू बेटी औरत तुम्हारी है। छटां फेर फिरले यह सब लाज तुम्हारी है।

(ख) त्यौहार गीत : बंजारा जनजाति में तीज, दीपावली, होली आदि त्यौहार महत्वपूर्ण माने जाते हैं। हिन्दू त्यौहार बंजारा जनजाति में मनाये जाते हैं। इसके साथ अपनी कुछ प्राचीन परम्परायें भी वे जोड़ देते हैं। तीज मनाने की परम्परा राजस्थानी परम्परा है। यह त्यौहार श्रावण मास में मनाया जाता है। तीज कुंवारी लड़कियों का विशेष त्यौहार है। तांडे की लड़कियां टोकरियों में मिट्टी लाकर उसमें गेहूं बोती हैं। दस दिन तक उसे पानी दिया जाता है। दसवें दिन तीज तोड़ी जाती है। दस दिन तक नाच गान होता हैं। इस समय का एक लोकगीत इस प्रकार है :---

तीन कुंळ पेरायो तीज
मन सेवाभाया पेरायो तीज

इसका भावार्थ यह है - तुझे तीज बोने के लिये किसने कहा है। मुझे सेवाभाया ने कहा है। (बंजारों का प्रसिद्ध संत) तीज त्यौहार का वर्णन विस्तारपूर्वक सी० आर० प्रताप ने किया है।[1]

दीपावली- बंजारा जनजाति में दीपावली दो दिन मनायी जाती है। पहले अमावस के दिन बकरा काटकर पूर्वजों की पूजा की जाती है। जिसे "काळी अमावस" वे कहते है। शाम के समय नायक के कहने पर सबके घर में दिये जलाये जाते हैं। दीपावली विशेष रूप से कुंवारी लड़कियां मनाती है। सायं समय तांडे की सभी कुंवारी लड़कियां हाथ में थाली तथा दिया लेकर सबके घर जाकर आशीर्वाद लेती है। घरवाले आशीर्वाद के रूप में गुड़ तथा पैसा लड़कियों को भेंट देते हैं। इसे इस जनजाति में मेरा मागेर कहा जाता है। उस समय लड़कियां इस प्रकार का गीत गाती है।

सातवां फेरा फिरले लड़का तू लड़की का है।

(1) यह गीत मैंने गोपली काळी, सकरी मामी-स्थान तरोडा -जिला यवतमाल में टेप किया। --लेखक।

वासे दनेरी लौट दवाली थाली तोन मेरा
वासे दनेरी लौट दवाली बापू तौन मेरा

दूसरे दिन लड़कियां उपवास रखती है। इधर उधर से फूल लाकर गोधन की वे पूजा करती है। उस समय यह लोक-गीत गाया जाता है।

ऊरे ऊं-- गाई गोधन पूज वेवल्या मेवल्या हीर मलाव
घोड़ेरी कटारे लांबी हार, धोलो हार।
लांब लांब सिंगेर टोकलीस माथेर
लादलास कानेर, पूला भर घी
तलावडी भर सास, गळेमा कसावटी
पैगला पैजन आन धन देस दवाली मावली।[1]

होली : बंजारी जनजाति में होली त्यौहार सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। दीपावली होते ही इस जनजाति को होली का आगमन अस्वस्थ कर देता है। तांडे के सभी लोग नये कपड़े पहनते है। नवयुवक विशेष रूप से होली खेलते हैं। जिसे इस जनजाति में "गेरीया" कहा जाता है। पंधरा दिन पहले से गेरीया रातभर नाचते कुदते है। होली के रात नाच गाणे नारी पुरुष के गुट बनकर खेले जाते है। नाचणे कुदने गाने में मोर हो जाती है। बंजारा जनजाति में सुबह सुबह होली जलाई जाती है। होली दो प्रकार की जलाते हैं। एक छोटी होली दूसरी बड़ी होली। दूसरे दिन फाग खेलते तीसरे दिन सार्वजनिक भोजन होता उसे वे गैर कहते। होली के समय दो प्रकार के लोकगीत गाये जाते है। नाच कुदकर गानेवाले गीत को वे "पायी जोलेर" कहते। बैठकर एक पर गाने वाले गीत को लेंगी कहते हैं।

1- (क) इसका भावार्थ इस प्रकार है। गो माता तु हमारे घरका धन है। घोड़े जैसी ऊंची पूरी है। तेरे गले में चांदी के हार हमने लाले है। तेरे सिंग बड़े-बड़े है। सर भी बड़ा है। तू जब दुध देती है तो ग्वूबा भर घी होता है। तालाब भर छांछ निकलता है। तेरे गले में तथा पांव में पैजन है। ये गो-माता तेरी हम पूजा करते है। हमारे तांडे को और

एक पायी जोर्रा लोकगीत इस प्रकार है ।

आदि आदि रातेरो तांल्लो थै लादो
बदूवा रैगो मलाणं ।
ओ बदूवा म लुंग सपारी, जायफल लौला
बदूवा धुंकेन चाली गैन्हावाली   बदूवा रै गो मलाणं
                    लालो देवर लोरै साथ ।
साथ साथ पान न मारी पिचकारी
                    छतिया गो रंगान   बदूवा रै गो---[1]

नारी के गीत : लोकगीतों में नारी गीतों का अपना महत्व रहा है । लोकगीतों का वर्गीकरण करते समय डा० श्याम परमार ने लोक साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार से किया है ।

लोक साहित्य

स्त्रियों का साहित्य	पुरुषों का साहित्य	बच्चों का साहित्य

मी आबाद कर ।

(ख) यह लोकगीत मैंने, कमली यमुना विमली के सौजन्य से टेप किया है । स्थान- तरोडा जिला- यवतमाल - लेखक ।

1- (क) भावार्थ इस प्रकार है । आधी रात के बाद तांडा लाद चला, उस (घरवली) गड्बड़ी में नारी अपना बदूवा भूल आयी । रास्ते में उसे याद आती है । वह अपने प्यारे देवर को साथ लेकर बदूवा खोजने जाती है उस बदूवे में पान खाने की अन्य सारी वस्तुएं रहती है । अन्त में बदूवा मिल जाता है । देवर पान खाकर भाभी की छतियां रंग डालता है ।

(ख) यह लोकगीत मैंने के० के० पवार, जवाहर राठौड़, हरिचंद राठौड़ गोविन्द जाधव के सौजन्य से टेप किया स्थान-गेवराई-जिला बीड़ ।

(1) गीत सभी प्रकार के व्रत उपवास आदि की कथायें पहेलियां गीत कथायें

(2) गीत साहित्य, कथायें गीत कथायें, चुकायल और कहावतें लोकोक्तियां मुहावरे आदि ।

(3) बालिकाओं का साहित्य , बालकों का साहित्य
गीत क्रम संबद्ध कथायें गीत क्रम संबद्ध कथायें वार्तायें ।[1]
वार्तायें ।

तात्पर्य लोक साहित्य में नारी गीत 75 प्रतिशत रहे है । इतना ही नहीं, जब लोक साहित्य का अध्ययन प्रारंभ हुआ तो नारी के गीतों को ही लोक गीत समझा गया था । मराठी में लोक साहित्य के प्राथमिक अध्ययन के समय नारी गीत तथा शिशु गीत महत्त्वपूर्ण अंग माने गये थे । दुर्गा भागवत मराठी लेखिका कहती है । "बालगाणी आणि स्त्री गीते लोक साहित्याचे महत्त्वपूर्ण अंग आहे ।[2]

तात्पर्य नारी गीत का वर्गीकरण से लोक साहित्य अधिक स्पष्ट हो सकता है ।

बंजारा जनजाति के नारी गीत के दो भेद माने जा सकते हैं । (1) चक्की के गीत (2) लोरी गीत ।

<u>चक्की के गीत</u> - नारी की स्थिति अन्य समाज के समान इस जनजाति में भी निम्न समझी जाती है । गृहस्थी जीवन में आने वाले दुखद अनुभव व्यक्त करने के लिए वह लोक गीतों का सहारा लेती है । चक्की पीसते समय का एक लोक गीत इस प्रकार का है :

आदलिक पीसू बाई पालीक पीसू ये

1- डा० श्याम परमार भारतीय लोक साहित्य : पृ०-21, सं०-1958

2- दुर्गा भागवत "लोकसाहित्य" पृष्ठ-7, संस्करण-1967
"नारी गीत और शिशुगीत लोकसाहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है ।"

वीरा मारी थुळो बेटोच बाई थे ।
वीरा मारो पामळों आयोच बाई थे
सासुरे मनमे कोपन बाई थे
लोट मरजाणूं जेठाणीं मरजाणूं थे
देवरेन पसीवा लाग जाणूं बाई थे
साषू मरजाणूं ससरो मर जाणूं थे
कल्प कुंजी हात लाग जाय बाई थे ।[1]

लोरी-गीत : सांस ससुर के प्रति अपनी घृणा वह व्यक्त करती है, किन्तु अपने बालक के लिये कितना सुन्दर गाती है । बालक यदि सो गया तो घर के सारे काम जल्दी निपटाये जा सकते हैं । लोरी गीतों में मां का प्रेम तो प्रगट होता है । एक बंजारा जनजाति का लोरी गीत इस प्रकार का है :

हालर गुलर लेलवाली , वाला सुतो फजवाली
हालर गुलर कुणं करीये । राजारी याली काम करिये
हालो किदी हालोही किली काटी वालोही ।
हातम दंल्या सोनेरो, कागला सिलायो मसरुरो ।
निंदी आयी वाकीन, कुं मारो मारे राजान ।[2]
हालर गुलर कुणं करिय -----

1- (क) इसका भावार्थ इस प्रकार है । सेर एक सेर दो सेर पीस कर में तंग आ गई हूं । मेरा भैया मेहमान बनकर आया है, उसे भूख लग गई होगी भैया को देखकर सांस के मन में कपट आया गया है । भगवान करना, सासा ससरा देवर जेठ जेठानी सब मर जाना चाहिए । इसके बिना मुझे आराम नहीं मिलेगा । उसके बाद घर की चाबी भी मेरे हाथ आ जायेगी ।
(ख) यह गीत मैंने कला राठोड़ । वाली बाई राठोड़ के सौजन्य से टेप किया है । स्थान, वरुड बिबी जिला- यवतमाल - लेखक ।

(घ) <u>शिशु गीत :</u> लोक साहित्य में शिशु गीत भी अपना महत्व रखते हैं। बालक खेलते समय विभिन्न प्रकार के गीत गाते हैं। ये उनके खेल गीत होते हैं। खेलते समय वे गाते हैं। बंजारा जनजाति में शिशु विभिन्न खेल गीत प्रचलित है। एक शिशु गीत का नमूना देखिए :---

तार हाथ कत छ, ऊंदर लेगो।
ऊंदर कत छ। खळ्ळा म चलगो।
खळ्ळा कत छ। पाणीं भरागो।
पाणीं कत छ। ढोर पीगे।
ढोर कत छ। काड चढगे।
काड कत छ बळगो।
राख कत छ वउगी
दका तार हाथ, तारे हाथे म मठाई मठाई [1]

2- (क) लोरी गीत का भावार्थ इस प्रकार का है। लोरी गीत में वैसे अर्थ उतना महत्वपूर्ण नहीं होता। शिशु को निंद आने के लिये विशिष्ट प्रकार की लयबद्ध ध्वनियां निकाली जाती है। - वह कहती है। हरी भरी खेती है। मेरा राजा झूले में सो रहा है। इसे रोज रोज गाना गाकर को कौन सुलवायेगा। मुझे तो सारे घर काम करना पड़ता। बेटा अभी सो जा तेरी आँखें लाल हो गई है, क्या मेरे राजा को लाल चिट्टियों ने तो नहीं काटा। बेटा सो जा मैं तुझे सोने का खिलौना दूंगी। किमती वस्त्र पहनाऊंगी।

(ख) यह गीत मुझे कु0 निर्मला जाधव की सौजन्य से टेप किया गया है। स्थान वसंतनगर औरंगाबाद।

1- (क) इस गीत द्वारा सामान्य ज्ञान तथा बुद्धि की परीक्षा देखी जा सकती है। छोटे छोटे सरल प्रश्न पूछकर बालक को प्रोत्साहित किया जाता है। लड़के गोलाकार बैठते हैं अपने हाथ पीछे छिपा लेते हैं। एक लड़का पूछता

(2) लोक कथा : लोक साहित्य में लोक कथा अपना महत्व रखती है। हजारों वर्षों से लोक कथा परम्परा जनसमूह द्वारा चली आ रही है। मनुष्य मूलत: कथा प्रिय होने के कारण, लोककथायें उसके जीवन का अंग बन गई है। लोगगीत छोटे होने के कारण उसमें कथा वस्तु का अभाव होता है। लोकगाथा में कथा महत्वपूर्ण होती है। लोक गीत का आनन्द प्रौढ़ लोक अधिक ले सकते हैं किन्तु लोकगाथा बालक से लेकर वृद्ध तक आनन्ददायी रही है। इसलिए डा० सरोजनी रौहतगी मानती है कि कथाओं में लोकजीवन की साधारण घटनाओं का अपनी भाषा में जैसा का वैसा वर्णन मिलता है।[1] लोकगीतों की भाषा काव्यात्मक होती, है। लोक कथा की भाषा बोलचाल की भाषा होती है।[1]

डा० कृष्ण कुमार शर्मा ने लोक कथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :--

(1) देवी देवताओं की कथा
(2) नीति कथायें
(3) ऐतिहासिक वीरों से संबंधित कथायें
(4) कुतूहल प्रधान कथायें
(5) पौराणिक कथायें
(6) प्रेम कथायें।[2]

लोक कथा जनता की अपनी कहानी है। देवी-देवताओं से संबंधित तथा पौराणिक ऐतिहासिक विषयों की दीर्घ कहानी कथा कहलाती है।

तेरा हाथ कहां है, चूहा ले गया चूहा कहां है बिल में छिप गया। बिल कहां है पानी पर गया। पानी कहां है। जानवर पी गये। जानवर कहां है पेड़ चढ़ गये। पेड़ कहां है। जल गया। राख कहां है, उड़ गई। बता तेरा हाथ-तेरे हाथ में मिठाई मिठाई ---

(ख) यह गीत मैंने कु० निर्मला जाधव के सौजन्य से टेप किया। स्थान-वसंतनगर, औरं०

1- डा० सरोजनी रौहतगी- अवधी का लोक साहित्य पृ०-32, सं०-1971
2- डा० कृष्ण कुमार शर्मा ' राजस्थानी लोकगाथा का अध्ययन' पृ०-9, सं०-1972

बंजारा लोककथाओं के संकलन के बाद उनका विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :

(क) मनोरंजक कथाएं

(ख) राजारानी की कथाएं

(ग) राक्षसों की कथायें

(घ) पशु-पक्षियों की कथाएं ।

(क) मनोरंजक कथायें : कथा सुनने तथा कहने की मनुष्य की एक प्रवृत्ति रही है । कथा विशेष रूप से बचपन से दादा-दादी और नाना-नानी सुनाया करते हैं । बच्चों की प्रवृत्ति खेल - कूद तथा मनोरंजन को देखकर आनंद देनेवाली तथा हास्य प्रधान कथायें बंजारा जनजाति में प्रचलित हैं ।

(ख) राजा-रानी की कथायें : प्राचीन काल से राजा-प्रजा पर राज्य करता आया है । राजा प्रजा की रक्षा करनेवाला माना गया है । राजा रानी की कथा सभी देश तथा जातियों में प्रचलित है । उसका प्रारंभ तथा अंत समान दिखायी देता है । एक राजा था । उसके दो रानियां थीं । एक पसन्द थी एक नापसंद थी । इस तरह से राजारानी की विभिन्न कथायें बंजारा जाति में प्रचलित है ।

(ग) राक्षसों की कथायें : जंगल-पहाड़ियों में बसने के कारण भूत-पिशाच जादू-टोना आदि की कथायें राक्षस के माध्यम से बंजारा जाति में प्रचलित हैं । राक्षस की शक्ति उसका खान-पान, उसकी क्रूरता का वर्णन कथाओं में दिखायी देता है ।

(घ) पशुपक्षियों की कथायें : पशु पक्षी तथा अन्य प्राणियों की कथायें प्रचलित हैं । कौवा, शेर, लोमड़ी, बगुला, आदि के माध्यम से मनुष्य की प्रवृत्तियों का चित्र कथाओं में प्रकट होता है । जिसमें पाप-पुण्य, दया-धर्म आदि की उपदेशात्मक बातें प्रकट होती हैं ।

उदाहरण के लिये एक लोक कथा इस प्रकार की है । एक सांडी छेयी । सांडे म दररोज एक राक्षस आव, न मन क्यान वटान ले जाव । सारो सांडी

घबरागो । आज केर पर पाळी आवच भगवाने न मालम । एक दन एक डोकरी रो एकलो एक बेटा राक्षस वटा लेगो । डोकरी रोतानीं याती फोड़ लिदी । राक्षस छोरान जंगळे म लेगो । मारन खाय वाळो आतराम ओन मुतळी आयी । मुतेर वळा छोरा धा सतानी फाळेप चल्गो । राक्षस यारी वही देको । ताडे साभू धास गो । रात भर फाड़ प बेटो । वो फाडे भेट देवगाडी आयी । रात भर बेटो परभाती चलगी । फाड़ थेटर आगा साफ कि दो देवगाडी खुश वेगी । दर रोज थेन दुध भले लागो देवगावडी छोरान दो वासलीं दिनी एक सकेर दुसर दकेर, दन भर सकेर वासली वजावू कर । एक दन छोरा नदी पर आंगोळी करेन गो । ओरो एक सोनेरो लटा टुट गो । ऊ लटा राजारे कुंडी न आंगोळी करतू वळां ला भो । राजार कुंडी पानी माटी छोड़ दिनी राजान हकीगत कळी । उ दवंडी दिनो सोनेर लटार छोरान जे पकड़न लाय ओन वे मांगीव जंवळो भलीय । यी वात डोकरीन कळगी । डोकरीन लागो, आव तो मरे वालू छु सोनेर लटारो छोरा जट जंगल में भळगो तो मारो न शीव उघड़ जाय । डोकरी जंगळे म आयी । छोरा सकेर वासळी वजा रो तो डोकरी लारतो आतर लीं पकड़ी छोरा दकेर वासली वजायो सारी गावडी बाटी आयी । डोकरीन मारे लाज डोकरी आळगायी । छोरा ओळख लिदो वापू ये तो मार याडी छ सकेर वासली वजायो । गावडी उभरेगी । सारी वात गावडीन डोकरी की । गावडी छोरान आशीर्वाद दीधी । छोरा याडी भळन राजा बन गे । राजार कुंडी कुडा वेगी । दोहीटो वाया हुओ पत्र रामराज करे लाग ।

इसका भावार्थ यह है :-- एक तांडा था । वहाँ एक राक्षस रहता था । वह हर दिन तांडे का एक आदमी रात में उठा ले जाता और मारकर खा लेता । तांडा परेशान हो गया । आज किसकी बारी आयेगी । भगवान जाने । एक दिन एक बुढ़िया का एकलौता बेटा राक्षस उठा ले गया । बुढ़ी ने रो-रोकर सर फोड़ लिया । राक्षस जंगल में गया । इतने में राक्षस को पेशाब आया । उतने में लड़का भागकर पेड़ पर चढ़ गया । राक्षस ने इधर-उधर देखा और तांडे

की ओर भाग गया । लड़का रात भर पेड़ पर बैठा रहा । उस पेड़ के नीचे देव गायें रुकती थीं । दिनभर चरकर रात में पेड़ के नीचे बैठ जातीं । लड़के ने जगह साफ की । देव गायें प्रसन्न हुईं । रोज दूध लड़के को देने लगीं । लड़का दूध पीकर रहने लगा । उसके बाल सोने के हो गये । देव गाय खुश होकर लड़के को दो बासुरी दी । एक सुख की दूसरी दुःख की । दिनभर सुख की बासरी वह बजाता रहता । एक दिन लड़का नदी में स्नान करने गया । उसका एक बाल टूट गया । उसने उसे नदी में छोड़ दिया । वह बाल बहते बहते जहां राजा की लड़की स्नान कर रही थी वहां चला गया । लड़की ने बाल देखा और ऐसे बाल वाले लड़के से शादी करने का इरादा किया । पर आयी खाना-पीना बंद किया । राजा को बात मालूम हुई । राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि जो इस लड़के को पकड़ लायेगा उसे मुंह मांगा इनाम दिया जायेगा । यह बात बूढ़ी को मालूम हुई । वह सोची कि अब मरने के दिन आ रहे हैं । सोने के बाल वाला अगर लड़का मिल गया तो किस्मत खुल जायेगी । बूढ़ी जंगल में गई । लड़का सुख की बांसुरी बजा रहा था । दूर से बूढ़ी को देखा दुःख की बासरी बजायी । सब गायें आकर बूढ़ी पर टूट पड़ीं । बूढ़ी रोने लगी । अपनी मां की आवाज सुनकर लड़के ने सुख की बासुरी बजायी । बूढ़ी छूट गई । बूढ़ी ने सारी कहानी गाय को सुनायी । देवगाय ने आशीर्वाद दिया । लड़का लेकर बूढ़ी राजा के पास गई । राजा खुश हो गया । लड़का लड़की का विवाह हुआ और वे आनंदपूर्वक रामराज्य करने लगे ।

बंजारा जाति में लोक कथा को साकी कहा जाता है । साकी में दो भेद वे मानते हैं । एक सुनने की कथा और दूसरी पहचानने की कथा । लोककथा को "सामकेर साकी " वे कहते हैं । जो पहचानने की साकी होती उसे वे "औलकेर साकी " कहते हैं । जो पहचानने की साकी (कथा) होती है । वह पहेलियां होती हैं । पहेलियों को बंजारा जनजाति में औलकेर साकी कहा जाता है ।

जैसे - तार बाप उठ आतरे सुत (पगड़ी)

हिन्दी - तेरा बाप उठता आतल्यां बटोरता (पगड़ी)

तार याड़ी उठ चलता म हात गाल (कांचळी)

तेरी माँ उठती दोनो हाथ लगा लेती । (चौली)

बंजारा जनजाति में विभिन्न कथाएँ मनुष्य के जीवन के संबंधित प्रचलित हैं । पहेलियों को वे सामलेर साकी कहते । बंजारा जाति में विभिन्न पहेलियां भी प्रचलित हैं ।

(3) लोक गाथा- बंजारा जनजाति में लोक गाथा की प्राचीन परम्परा है । राजे-महाराजे अपने दरबार में भाट तथा चारण लोगों को आश्रय देकर साहित्य लिखवाते थे । उस साहित्य में प्रशंसा तो अधिक होती थी किन्तु कुल वंश का इतिहास भी प्रगट होता था । एक हाथ में तलवार और एक हाथ में ढफ लेकर रण-भूमि पर वे लोग गाते थे । बंजारा जाति में ढाढी नामक एक उपजाति होती वह लोकगाथा गाकर अपना निर्वाह करती ।

डा० सन्तराम अनिल कहते हैं कि " किसी भी प्रदेश की संस्कृति का जीताजागता चित्र उसके लोक साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है ।"[1] चाहे मनुष्य किसी भी जाति-पाँत का क्यों न हो किन्तु उसका लोकसाहित्य उसकी प्राचीन परम्परा का इतिहास अवश्य प्रकट करता है ।

लोक गाथा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में भी विवाद रहे हैं । लोकगाथा का भी रचयिता अज्ञात होता है । आगे चलकर लोकगाथा गानेवाला विशिष्ट व्यक्ति होता है । इसीलिए वह व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत विशेषताएं उसमें जोड़ देता है । जिसके कारण परिवर्तन दिखायी देते हैं ।

1- डा० सन्तराम अनिल कन्नौजी लोक साहित्य पृ०-9, सं०-1973

डा० कृष्ण कुमार शर्मा लोकगाथाओं की विशेषतायें इस प्रकार से मानते हैं। (1) संगीतात्मकता (2) सुदीर्घ कथानक (3) रचयिता के व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य का अभाव (4) टेकपद की पुनरावृत्ति।[1]

बंजारा लोकगाथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है। (क) - धार्मिक (ख) ऐतिहासिक।

(क) धार्मिक गाथायें बंजारा जनजाति में प्रचलित हैं। इनमें हरिश्चंद तारामती तथा राम-कृष्ण की गाथाएं गायी जाती है। सेवाभाया नामक प्रसिद्ध संत बंजारा जनजाति में हुआ है। जिसकी जीवन गाथा भी बंजारा लोग गाते हैं। सेवाभाया के जीवन की सुदीर्घ गाथा वे रात भर गाते रहते हैं। सेवाभाया के महत्वपूर्ण वचन (विचार) गाथाकार सुनाता रहता है। जैसे---

चारी लुटेरो कान लाय, पव कुंळ तारीय राम
मां न बेटा मारी व्हीय राम।[2]

भावार्थ : आदमी अनाज के लिये तड़पकर मर जायेगा ऐसा आकाल आनेवाला है, मां को अपना बेटा बोझ लोगा ऐसे समय पर हमें साथ देनेवाला कौन है, धार्मिक गाथा दशहरा त्यौहार के समय गायी जाती है।

(ख) ऐतिहासिक लोकगाथा - बंजारा जनजाति मूलत: राजपूत रही है। व्यापार के लिये राजपूत से वे अलग हुये। ऐतिहासिक लोकगाथा की परम्परा इस जाति में दिखायी देती है। आल्हा-ऊदल की जीवन गाथा बड़े गर्व के साथ वे गाते हैं। प्राचीन काल में बरसात के चार महीनों में वे बैठकर खाते हैं, उस समय मनोरंजन के लिये आल्हा-ऊदल की गाथा गाते हैं। जब गाथा किसी तांडे में चलती है तो पास - पड़ोस के तांडे के लोग सुनने के लिये आते हैं। गाथा शुरु

1- डा० कृष्ण कुमार शर्मा "राजस्थानी लोकगाथा का अध्ययन" पृ०-16-17, संस्करण- 1972।

2- आत्माराम राठोड "संत सेवादास लीला चरित्र" (मराठी दीर्घ काव्य) पृष्ठ- 95, संस्करण 1973

करने के पहले घास की सूखी-गट्ठरें सामने रखते हैं और गाथा प्रारंभ होती है। इस जाति में मान्यता है कि आल्हा ऊदल की गौरव-गाथा समाप्त होते समय घास की ये गट्ठरें जलने लगती है।

लोक गाथा गाने की इनकी अपनी पद्धति है। गानेवाला व्यक्ति क्रम गाथा प्रारंभ करता है और अन्य लोग उसे दोहराते हैं। झूम बजाकर वह गद्य रूप में श्रोता वर्ग को समझाता है। जिस तरह से कथा सुनने वाला मैं सुन रहा हूं यह जताने के लिये हां हां कहता है, उसी तरह गाथा गाने वाला व्यक्ति सभा को संबोधित करते हुए कहता है - देखिये अब आल्हा ऊदल अपनी वीरता का प्रदर्शन कैसे करते हैं और शत्रु के जाल से कैसे छुटकारा पाते हैं। इस प्रकार संबोधित करके कहने की लोक गाथा की विशेषता मानी जाती है। सब लोग गाते नहीं हैं, किन्तु सब लोग, अपने आपको भूलकर गाथा सुनने में मग्न हो जाते हैं। लोकगाथा गाने का अपना एक विशिष्ट ढंग होता है, जिसे सुनकर शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

(4) लोकोक्तियां : मनुष्य अपने जीवन को जिस तरह से जीता है, देखता है और सुनता है, उसे कम से कम शब्दों में वह प्रसंग आने पर प्रकट करता है। जिस ढंग से वह व्यक्त होता है, उसे उक्तियों कहा जाता है। मोहन कृष्ण दर कहते हैं --"संस्कृत में लोकोक्ति को सुभाषित या सूक्ति का नाम दिया जाता है सूक्ति शब्द की उत्पत्ति उक्ति से हुई है। साधारण जनता ने इसका रूप लोकोक्ति में बदल दिया।"[1] निरक्षर व्यक्ति भी लोकोक्तियों से आनन्द ले सकता है। प्राचीन काल से मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी यह चली आ रही हैं। अपनी बोलचाल की भाषा में अपने अनुभव का निचोड़ लोकोक्तियों में दिखायी देता है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ भरकर लोकोक्तियां समाज में एक तरह से जागृति का कार्य करती हैं। मनुष्य चाहे कितना भी स्पष्ट वक्ता क्यों न हो किन्तु कभी - कभी अपनी बात वह लोकोक्तियों का सहारा लेकर ही कहता है। समझने वाला समझ जाता है। किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप में

1- मोहन कृष्ण दर "कश्मीर का लोकसाहित्य" पृष्ठ-215, सं0-1963

लौकोक्ति दुःखित नहीं करती । उस पर सबका अधिकार होता है । इसका भी रचयिता अज्ञात है । डा0 हरिदत्त भट्ट शैलेश " कहते हैं " लौकोक्ति जनता जनार्दन की उक्ति है ।[1] लौकोक्तियों का वर्गीकरण मोहन कृष्ण दर इस प्रकार से करते हैं : (1) स्थान संबंधी (2) जाति व्यवसाय आदि संबंधी (3) प्रकृति तथा कृषि संबंधी (4) पशुपक्षियों संबंधी ।[2]

वास्तव में - मनुष्य का संबंध जीवन में जहां जहां जाता है, वहां की अनुभूति लौकोक्तियों में प्रगट होती हैं । वर्गीकरण अधिक करने से ही किसी विधा का महत्त्व कम या अधिक नहीं होता । लोक साहित्य में लौकोक्तियों का अपना एक महत्त्व है । आज लौकोक्तियों के प्रति विशेष अध्ययन तथा शोध की आवश्यकता है । लोक साहित्य और लोकजीवन का स्पष्ट स्वरूप हमें केवल लौकोक्तियों में ही दिखायी देता है । डा0 नाथूलाल पाठक ने हाड़ौती कहावतों का विशेष अध्ययन किया है । इन्होंने वर्गीकरण एक से लेकर बारह तक माना है । वे कहते हैं --"कम से कम शब्दों में जीवन का अनुभव उड़ेल कर रख देना, जन जीवन को आलोकित करना उसके मार्मिक तथ्य प्रगट करना तथा संचित ज्ञान को संक्षिप्त सूत्र रूप में प्रस्तुत करना कहावत का कार्य है ।[3]

मुहावरे तथा कहावतें लौकोक्तियों के महत्वपूर्ण अंग माने जाते हैं जिससे सारा समाज परिचित है । बंजारा लौकोक्तियों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है । (क) स्थानीय (ख) सर्व प्रचलित ।

(क) स्थानीय - वैसे बंजारा जनजाति एक जगह स्थिर नहीं है । स्थानीय लौकोक्तियाँ बहुत कम प्रचलित है ।

बंजारा समाज में प्रचलित कुछ लौकोक्तियां नीचे दी जा रही हैं ।

(1) कतरा मुतैर वेला, अनू सलिया धासैर वेला एक वेगी ।

हिन्दी- खरगोश उठने का समय और कुत्ते की पेशाब का समय एक हो गया ।

1- डा0 हरिदत्त भट्ट गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य " पृ0-15, सं0-1976

2- मोहन कृष्णदर "कश्मीर का लोक साहित्य "पृष्ठ-217, सं0-1963

3- डा0 नाथूलाल पाठक "हाड़ौती कहावतें " पृ0-3, संस्करण-1975 ।

(2) येई गमाई वोई गमाई वळ्ना मारी गोई गमाई ।

हिन्दी - अपने हाथ का छोड़कर अन्य के पीछे लगे तो दोनों ही जाते हैं ।

(ख) सर्व प्रचलित - बंजारा जनजाति में सर्वप्रचलित लोकोक्तियां अधिक हैं ।

(1) जांगड़ सी सर तो बेटा सारु कसेन रोव ।

हिन्दी- नौकर से काम होता तोवे पुत्र के लिये क्यों तरसते ।

(2) मकोला को थाली तार सारु गोलेर भेली लाडू
बेटा तार कन नाई देरी क ।

हिन्दी- असंभव काम कोई करना चाहता है, तब उसकी ताकत उसे बताई जाती है ।

(3) बोरीन तेल मत लगा ।

हिन्दी - विवाह के लिये उतावला होना

(4) ढाकाढान कत यी तीन पान ।

हिन्दी - ढाक के कहीं भी जाओ तीन ही पत्ते ।

तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य में लोकोक्तियां अपना महत्व रखती हैं बंजारा लोक साहित्य में लोकोक्तियां अच्छे-बुरे अनुभव की बात कहती हैं । मनोरंजन के साथ तीखा असर भी लोकोक्तियां करती हैं ।

ती स रा अ ध्या य

बंजारा लोक-साहित्य और समाज

समाज के रूप में मनुष्य के सारे रूप हमें लोक साहित्य में दिखायी देते हैं। अकेले मनुष्य की कल्पना हो सकती है, उसका व्यक्तिगत रूप अपने आप में पूर्ण होते हुये भी अधूरा है, जैसे लोक साहित्य का रचयिता अज्ञात है, किन्तु उसका साहित्य जनता का साहित्य कहलाता है। मानव का पारिवारिक रूप तथा अपना जातीय रूप सहज ढंग से उसके लोक साहित्य में दिखायी देता है। वैसे सारे रूपों को लेकर समाज समाज कहलाता है।

लोक साहित्य और समाज का संबंध इतना गहरा है कि उसे अलग निकाल कर पूर्णता से देखा नहीं जा सकता। लोक साहित्य में व्यक्त समाज के सारे रूप हमारे सामने प्रकट होते हैं। लोक साहित्य का एक मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है, क्योंकि मनुष्य के मन के सारे सुप्त-असुप्त भाव लोक साहित्य में व्यक्त होते हैं। डा० एस० बी० चौधरी कहते हैं कि " लोक साहित्य लोक जीवन के लिये दर्पण के समान है, जिसमें लोक-जीवन का रूप अधिक आकर्षक और साफ सुथरा होकर झलकने लगता है।"[1]

बंजारा समाज प्राचीन काल से टोलियां तथा गुट बनाकर रहनेवाला समाज है। जब कोई समाज अथवा समुदाय अपने सीमित परिधि में जीता है, तो आगे चलकर यह पद्धति उसकी जीवन-पद्धति बन जाती है। बंजारा समाज में सामूहिक जीवन पद्धति को महत्व दिया गया है।

1- डा० एस० बी० चौधरी 'लोक साहित्य और पातरी भाषा' पृष्ठ 162, संस्करण - 1978

(1) सामूहिक जीवन : बंजारा लोक साहित्य का अध्ययन करने के बाद यह बात स्पष्ट होती है कि "बंजारा जनजाति में सामूहिक जीवन पद्धति को महत्व दिया गया है, जैसे इस लोकगीत में - "आधी आधी राते रो तांल्लो ये लादो ।

सारा तांडा व्यापार के लिये निकल पड़ा है । एक परिवार नहीं है । तांडा व्यवस्था सामूहिक जीवन पद्धति को महत्व देती है । यह एक सामूहिक जीवन चलाने की व्यवस्था है, उसमें नायक, कार्यभारी डालिया, ढाडी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

(क) नायक : तांडे के प्रमुख टोली के मुखिया को नायक कहा जाता है । आदिम तथा आदिवासी जातियों में नायक की व्यवस्था होती है । बिहार प्रांत में बिरहोर नामक आदिवासी जाति है । इनके टोली के प्रमुख व्यक्ति को नाया कहा जाता है । बिरहोर जनजाति की बस्तियों को तांडा कहा जाता है ।[1]

तात्पर्य यह है कि आदिवासी जनजातियों में नायक प्रमुख माना जाता है । नायक तांडे का संपूर्ण कार्यभार संभालता है । तांडे में जो परिवार होते हैं, उनका सारा जीवन - व्यापार चलाने का उत्तरदायित्व नायक पर होता है एक कहावत है कि " नायक बोले और तांडे चाले " नायक अपने तांडे का अधिपति माना जाता है । नायक जो आदेश देता है उसे सामुदायिक रूप स्वीकारा जाता है । बंजारा लोकगीतों में देवी देवताओं की स्तुति के बाद नायक की प्रशंसा की जाती है ।

"नायक बापू तारो भलो कर ।
बालाजी तारो भलो कर"[2]

1- जियाऊद्दीन अहमद - "बिहार के आदिवासी " पृष्ठ-134, सं0-1959

2- नायक बापू तेरा अच्छा करेंगे ।
बालाजी तेरा अच्छा करेंगे ।

(ख) कार्यभारी (कारभारी) : तांडे में जो दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है, उसे बंजारा समाज में कारभारी कहा जाता है । तांडे का सारा कार्यभार चलाने के लिये कार्यभारी होता है । नायक आदेश देता है और कार्यभारी इसकी देखभाल करता है कि नायक के आदेश का पालन हो रहा है या नहीं । नायक तथा कार्यभारी की प्रथा वंश परम्परागत रूप से चली आती है । लोक साहित्य में कार्यभारी का उल्लेख मिलता है ---

"पैलो बेटा नायकी करीयै ।
दूसरो बेटा कारभारी करीयै " [1]

नायक और कार्यभारी के साथ नायकिन (नायक-पत्नी) कार्यभारिन (कार्यभारी की पत्नी) का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है । विवाह-त्यौहार आदि के समय इन्हें मान मर्यादा दी जाती है । इन्हें वंशपरम्परागत अधिकार मिलने से विपरीत परिणाम भी होते हैं । तांडे का नायक और कार्यभारी बदला नहीं जाता ।

(ग) ढालिया : तांडे की सेवा के लिये तथा छोटे मोटे कार्यों के लिये नायक ढालिया को अपने तांडे में रखता है । शादी विवाह की सूचना तथा अन्य महत्वपूर्ण संदेश पहुंचाने के लिये नायक ढालिया को अन्य तांडों में भेजता है । इसके साथ ही नाच गाने और त्यौहार के समय ढक्क बजाने का भी वह काम करता है । लोकगीतों में भी इसका उल्लेख मिलता है, जैसे ---

"ढालिया ठिक वजा ढक्का " [2]

ढालिया तांडे के साथ ही अपने परिवार के साथ चलते रहता है । सुबह - शाम हर एक के घर जाकर वह भोजन मांग लेता है । तात्पर्य यह कि तांडे का

1- पहला लड़का नायक बनेगा ।
दूसरा लड़का कार्यभारी बनेगा ।
2- ढालिया ठीक तरह से ढक्क बजा ।

नायक ढालिया तथा उसके परिवार की आवश्यकतायें पूरी करता है । अतः ढालिया भी बंजारा समाज का एक अंग है ।

(घ) ढाढी - तांडे में ढाढी नामक व्यक्ति (व्यक्ति विशेष का वाचक नहीं) भी होता है, जिसका काम केवल मौखिक रूप में वंशावली का इतिहास बतलाना होता है । नायक और कार्यभारी की प्रशंसा में वह गीत गाता है । कभी-कभी तांडे में लाब गाथा चलती है तो ढाढी अपना वाद्य लेकर रातभर गाथा गाता रहता है । ढाढी एक ही तांडे में नहीं रहता । वह जहां जहां तांडे हैं वहां वहां जाकर गीत गाता है । एक गीत में आया है ---

"ढाढी बंद कर तारो किंगरो ------"[1]

नायक कार्यभारी, ढालिया ढाढी आदि महत्वपूर्ण व्यक्ति तांडे का सामूहिक जीवन चलाते रहते हैं ।

(2) पारिवारिक जीवन - बंजारा जनजाति में पारिवारिक जीवन महत्वपूर्ण रहा है । मनुष्य चाहे किसी जाति धर्म का क्यों न हो पारिवारिक जीवन सब जीते हैं । परिवार इसीलिए तो संस्कार केन्द्र माना जाता है । मनुष्य सबसे प्रथम अपने परिवार पर प्रेम करता है । पारिवारिक नाते-रिश्ते, पारिवारिक व्यवस्था जब से चली आ रही है तब से माने जाते हैं । बंजारा जाति व्यापार के लिए घूमने वाली जाति रही है । एक बार बिछुड़ने के बाद भेंट कब होगी , कुछ कहा नहीं जा सकता । इसलिए बंजारा जनजाति के लोक साहित्य में भाई बहन, मां बेटी और ननद-भाभी आदि के प्रेम तथा विरह के गीत पाये जाते हैं ।

1- ढाढी अभी बंद कर अपना किंगरो (एक वाद्य यंत्र)तांडे का सामूहिक

(ख) भाई-बहन : भाई-बहन का प्रेम बंजारा परिवार में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। बचपन से साथ रहकर भी बहन को अपना भाई छोड़कर जाना पड़ता है। इतना ही नहीं बहन पर ससुराल के लोगों का अधिकार होता है। विवाह के बाद अपने परिवार से भेंट होना प्राय: कठिन होता है। इसलिये लड़की विवाह के समय अपने भाई के गले में बाहें डालकर फूट-फूट कर रोती है। ---

"मारो रे मारवाड़ी वीरेलां
अपणी भैनेती टालो मत लाजो रे वीरेलां "[1]

विवाह के बाद बहन ससुराल चली जाती है। इच्छा होने पर भी अपने भाई से मिल नहीं सकती। त्यौहार आदि के समय बहन भाई का रास्ता देखती रहती है कि वह लेने के लिये आयेगा।

एक लोकगीत इस प्रकार है :
"सिणारी जोड़ी बाई फूलैनाली टांगा
भैनन लैयन वीरा आयो बाईय।"[2]

बहुत दिनों के बाद भैया लेने आया है। उसका स्वागत कैसे करना चाहिए इसकी चिंता बहन को लगी रहती है। घर-काज से छुटकारा नहीं मिलता। चक्की पीसते हुए वह रुक जाती है। मेरा भैया दूर से आया हुआ है, उसे भूख लग गई होगी।

1- "मेरे प्यारे मारवाड़ी वीर भैया
अपनी बहन को दूर नहीं करना।"
2- बैलों की सुन्दर गाड़ी जोड़ी लेकर
बहन को लेने के लिया भैया आया है।

"आदलिक पीसू वाईं पालीक पीसू
वीरा मारो मुको बेटोच वाईंये "[1]

लोक साहित्य में भाई बहन के प्रेम का पारिवारिक चित्र हमें दिखायी देता है ।

अपनी बहन की आर्थिक स्थिति देखने के बाद भाई के आंख में पानी आ जाता है । अपनी जेब से रुपया निकालकर वह बहन को देता है । इस प्रकार के विभिन्न प्रसंगों के गीत बंजारा जाति में गाये जाते हैं । अपनी स्थिति खराब होने पर भी बहन अपने भाई को मां-बाप का ध्यान रखने को कहती है ।

(ख) मां-बेटी : मां बेटी का रिश्ता परिवार में महत्व पूर्ण माना गया है । जैसे मां की अवस्था होती है, उसी अवस्था से बेटी को गुजरना पड़ता है । बंजारा समाज में लड़की होना अन्य समाज के समान एक आपत्ति मानी जाती है । इसलिए परिवार में मां-बेटी का प्रेम महत्वपूर्ण माना गया है । अपना घर छोड़कर अन्य घर जाना एक दु:खद बात है, किन्तु नारी को इस अवस्था से गुजरना ही पड़ता है । मां-बेटी के विभिन्न लोकगीत बंजारा जनजाति में प्रचलित है । विवाह मां-बेटी को अलग करने वाली घटना होती है । मां के मन में यही विचार आता है कि मेरी लड़की कैसी होगी । विवाह के समय मां के गले में पड़कर लड़की रोती बिलखती है :---

"यानी ये हिंया
चांदा सुरियारी जोड़ी ज्यूं हमारी जोड़ी
किनी मूंगी सपाती ज्यूं तमारी बेटी कोणी
सपाती यानी ये हिय्या "

भावार्थ - मां तेरी-मेरी जोड़ी चांद-सूरज के समान थी । आज तू मुझे अपने से दूर कर रही है । अपने इतने बड़े घर में सब समा जाते हैं, सब रहते हैं, पर क्या मैं ही आपको बोझ बन गई थी ।

1- मैं कितना आटा पीसूं, मेरा भैया
भूखा बैठा हुआ है ।

आगे वह अपनी माँ से कहती है -- माँ तूने मुझे खिला-पिलाकर बड़ा किया है । जब मैं काम करने लायक हुई तो तू अपनी मदद करने के बजाय मुझे दूर भेज रही है ।

"पालों कुं पोसो कुं कुल भोग सुखराज "[1]

(ग) बाप-बेटी : अपनी मन की बात बेटी बाप के सामने प्रकट नहीं करती । उसी तरह बाप भी अपने मन की बात बेटी को बता नहीं सकता । सुख-दुःख की बात माँ के माध्यम से ज्ञात होती है । पिताजी का स्वभाव देखकर बेटी एक लोकगीत में, (जो विवाह के समय लड़की विरह के रूप में गाती है और जिसे बंजारा जनजाति में हावलो कहा जाता है) कहती है -----

"रांगो छु नव ज्यूं नवींव
रूपो छु तप ज्यूं तपीऊ
सुई रे नाके माईन निकलीव
तो भी तमेन ओल मो कोनी आय
दू बापू रे हियूव "

इसका हिन्दी-अर्थ इस प्रकार हो सकता है । जिस तरह से मुझे झुकाया जायेगा उस तरह से मैं झुककर रहूँगी । चांदी जैसे तपती है वैसे मैं तपकर निकलूँगी । समय आने पर सूई की नोक में से निकल जाऊँगी किन्तु अपने कुलवंश को दाग नहीं लगने दूँगी । पिताजी जिससे आपको नीचा देखना पड़ेगा वैसा जीवन में काम नहीं करूँगी । परिवार में बाप-बेटी के बीच की भावना के गीत अन्य लोक साहित्य में कम दिखायी देते हैं । पराये घर जाने के बाद भी बाप की मानमर्यादा का ध्यान बेटी बंजारा जनजाति में रखती है ।

1- पाल पोसकर जिसने बड़ा किया और सुख किसे मैं दे रही हूं ।

माँ-बेटी के तथा बहन-भाई के लोकगीत के रूप में प्रचलित कैन नारी गीत ही इस जाति में विद्यमान हैं ।

(घ) देवर-भाभी : परिवार में देवर-भाभी का प्रेम भी महत्वपूर्ण माना जाता है । भाभी-देवर को अपने पुत्र के समान समझती है । पति का भाई होने के कारण उसका हंसी-मजाक भी वह सहती है । देवर-भाभी के लोग गीत बंजारा जाति में केवल होली के समय ही गाये जाते हैं । देवर-भाभी के प्रेम का एक लोकगीत इस प्रकार हैं :---

"आधी आधी रात सी ताल्लो ये लादी
------ लाड़ो देवर ओरे साथ "[1]

फाग के समय के लोकगीत देवर भाभी से संबंधित अधिक दिखायी देते हैं । किन्तु एक रिवाज होने के कारण वे गाये जाते हैं और उसके पीछे एक पवित्र भावना होती है ।

एक फाग गीत इस प्रकार का है :
"भौजाई य कागला लेगो कचोली य
अब देद्यु - - - तोन " - - - -[2]

भाभी बड़ी होने के कारण देवर की सारी हरकतें समझती है । लोककथाओं में भी देवर-भाभी का वर्णन आता है । लक्ष्मण सीता का संदर्भ लगाकर गाया जाता है । भाभी हो तो सीता जैसी और देवर हो तो लक्ष्मण जैसा- ऐसा बंजारा जनजाति में माना जाता है ।

1- प्यारा देवर मेरे साथ है, मुझे चिंता करने की आवश्यकता नहीं ।
2- भाभी कौवा कटोरी चुराकर ले गया है ---
मैं भइया को कह दूंगा नहीं तो ---

(ङ) <u>ननद-भाभी</u> : ननद - भाभी परिवार को अच्छा भी कर सकती है तथा बुरा भी कर सकती है । परिवार में इनका ऐसा महत्वपूर्ण रिश्ता है । वैसे देखा जाय तो दोनों सहेलियां हैं । एक न एक दिन ननद दूसरे के घर जाने वाली है । वहां उसे भाभी बनना पड़ेगा बंजारा पारिवारिक जीवन में ननद-भाभी का नाता प्रेम का ही नाता प्रगट हुआ है । दोनों सहेलियों के समान रहती हैं । ननद भाभी को छोड़कर अपने ससुराल जाती है उस समय भाभी अपनी भावना लोकगीत में इस प्रकार व्यक्त करती है :---

"नणंद चाली सासरा भौजाई रोवरे
फटती कांगळ्यां
मारे आंगळारी बैठक टुटी रे ".[1]

ननद अपना प्रेम भाभी के प्रति अनेक लोक गीतों में व्यक्त करती है । भाभी दूर से पानी ला-लाकर तंग आ गई है । यह अवस्था देखकर ननद-अपने भाई से बिनती करती हैं । वह लोक गीत इस प्रकार है :---

"बापून के वीरा कुवलो खदाद ।
महीं भरीव मारी भावज भरीये
कुवले री थंडो पाणीं ।".[2]

(च) <u>सास-बहू</u> : सास-बहू का रिश्ता समाज में प्रसिद्ध है । वही बात बंजारा जनजाति में भी दिखायी देती है । सास-बहू को अपनी बेटी न समझकर नौकरानी मानती है जिसके कारण पारिवारिक जीवन कष्टमय बन जाता है । परिवार में संघर्ष का जन्म हो जाता है । मां और पत्नी के संघर्ष में लड़का

1- ननद ससुराल जा रही है, भाभी फूटकर रोने लगी है, भाभी के आंगन की बैठक आज टूट गयी है ।

2- भैय्या पिताजी से कहदो, कुंआ खुदवा लो । उस कुएं का ठंडा पानी मैं और मेरी प्यारी भाभी भरेंगी ।

परेशान हो जाता है । सास शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट बहू को देती है, और उसके माँ-बाप का भी अपमान करती रहती है । इन सारी बातों से त्रस्त होकर बहू अपनी भावना चक्की के एक लोकगीत में इस प्रकार व्यक्त करती है :---

"वीरा मारो पामलो आयोछ वाई ये
सासु रै मन में कौपन वाई ये"[1]

जब बहू देवर, जेठ-जेठानी और सास-ससुरे से परेशान हो जाती है तो देवी की विनती करती है । एक लोकगीत इस प्रकार का है :---

"सासु मरजाछु ससरो मरजाछु ये
कलप कुंजी हात लाग जाय वाई ये"[2]

सास बहू का चरित्र परम्परागत रूप से चला आ रहा है ।

<u>पारिवारिक जीवन और विवाह</u> - पारिवारिक जीवन में विवाह अपना महत्त्व रखता है । विवाह के कारण ही परिवार बनता है । बाल-विवाह , विधवा विवाह बहुविवाह आदि का प्रचलन बंजारा समाज में दिखायी देता है ।

(क) <u>बाल-विवाह</u> : बाल-विवाह की प्रथा इस जाति में प्राचीन काल से चली आ रही है । महाराष्ट्र के सतारा नामक तालुके का सर्वे किया गया था जिसमें बाल-विवाह की संख्या अधिक दिखायी देती है ।

1- मेरा भैया मेहमान बनकर आया है । यह देखकर सास के मन में कपट आ गया है ।

2- सास ससुरा मर जाना चाहिये । ये लोग मरे बिना घर की ताला चाबी मेरे हाथ नहीं आयेगी ।

विवाह के समय स्त्री पुरुष की उम्र

वर्ष	पुरुष	स्त्री
0-10	02	22
10-15	16	50
15-20	74	52
20-25	4	00

1

प्राय: 56 प्रतिशत से अधिक लड़कियां विवाह की उम्र के पहले ही विवाहित होती हैं। यह स्थिति आज की है। प्राचीन काल में बाल-विवाह की प्रथा अधिक व्यापक रही होगी। बाल-विवाह होने के दो कारण माने जाते हैं। लड़की मां-बाप के लिये बोझ के समान होती है। इसलिए वे जल्दी विवाह कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं। दूसरे आदिम जातियों में कुंवारी लड़की का घर में अधिक उम्र तक रहना अच्छा नहीं माना जाता था। खेलने-कूदने के समय विवाहित होने से लड़की व लड़के के स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ता है, जिसका प्रभाव सारे परिवार पर पड़ता है। बाल-विवाह के कारण मृत्यु-संख्या भी अधिक होती है।

(ख) विधवा विवाह : बंजारा जाति में विधवा विवाह समाज-मान्य है। बाल-विवाह तथा बहु-विवाह के कारण विधवा विवाह अधिक प्रचलित है। ऐसा मानते हैं कि प्राचीन काल में राणा कांजी युद्ध में मारा गया, तब उसके छोटे भाई ने अपनी भाभी को अपनी धर्म-पत्नी बना लिया। तबसे यह प्रथा इस जाति में भी प्रचलित है। एक विवाह समय का लोक गीत है :---

---

1- प्रा० दा० चौ० काचोळे " बंजारा समाजाची सामाजिक परिस्थिती " मराठी लेख- "विमुक्त जन" त्रैमासिक अप्रैल से जून 1978 संपादक - सुरेश पूरी।

"राणा कांजी रै हाथरो डोरलों
थूं छूटे लाल"[1]

अपने घर में आकर स्त्री विधवा होती है तो इस जाति में यह स्वीकृत किया गया है कि अपने घर की लक्ष्मी और कहीं नहीं जाये, या अन्य कारणों से अपने परिवार की बदनामी न हो। प्राचीन काल में लड़की होते ही मार डालने की प्रथा थी, जिससे परिणाम स्वरूप नारियों की संख्या कम हो गई। तात्पर्य यह है कि बंजारा जाति में विधवा-विवाह आज भी प्रचलित है। दुबारा विवाह को मान्यता दी जाती है।

(ग) <u>बहु-विवाह</u> : बंजारा एक आदिम जाति होने के कारण इसमें बहु विवाह की प्रथा भी प्रचलित है। बंजारा जाति में अधिक विवाह करना मान-मर्यादा समझी जाती है। नायक एक तरह से तांडे का राजा ही होता था। राजा जिस तरह से अधिक रानियां अपने साथ रख सकता था, वही बात बंजारा जनजाति में भी दिखायी देती है। सामान्य परिवार में बहु-विवाह नहीं होते। केवल नायक तथा कार्यभारी बहु-विवाह करते हैं। बहु-विवाह के कारण इस जाति में इस तरह के हो सकते हैं। (1) मानमर्यादा के लिये (2) सन्तान न होने पर (3) पुत्र प्राप्ति के लिए। बंजारा जनजाति में बहु-विवाह के साथ अनमेल विवाह भी होते थे। जबरदस्ती विवाह की भी प्रथा इस जनजाति में प्रचलित है। उसी तरह कुंवारी लड़कियाँ भगाकर ले आना और विवाह करना सर्वसामान्य रूप से माना जाता है। कुंवारी लड़कियों को भगाकर ले जाने की प्रथा पुरातन में थी। विवाहित स्त्री को भगाकर ले जाने की घटना बंजारा जाति में अधिक दिखायी देती है।

तात्पर्य यह है कि पारिवारिक जीवन में विवाह अपना महत्त्व रखता है। विवाह की अवस्था तथा प्रकारों से परिवार बनते-बिगड़ते हैं। जिस तरह से अन्य

1- राणा कांजी के हाथ से बंधा हुआ बंधन है। वह कैसे छूट सकता है।

समाजों में संघर्ष के कारण धन और नारी माना जाते हैं, वही बात बंजारा जनजाति में भी हमें दिखायी देती है ।

(3) व्यवसाय तथा आर्थिक स्थिति :

बंजारा लोक साहित्य के अध्ययन तथा शोध के बाद बंजारा जनजाति की आर्थिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है । प्राचीन काल में व्यवसाय के आधार पर जाति व्यवस्था का निर्माण हुआ था । बंजारा जाति का व्यवसाय व्यापार करना रहा है । बंजारा जाति का व्यवसाय दो तरह का रहा है - एक व्यापार का तथा दूसरा केवल माल ढोने का । डा० श्याम परमार कहते हैं - "बनजारा शब्द के साथ ही व्यापार का अर्थ सन्निहित है । बनज या बणज का तात्पर्य वाणिज्य से है ।"[1] लोक साहित्य में हमें ऐसे संकेत मिलते हैं कि बंजारा जनजाति प्राचीन काल में नमक का व्यापार करती थी ।

"लदो लाद लायकेरो तांडो
भरन लुन ले आयो तांडो ।"[2]

प्राचीन काल में पशु के अतिरिक्त यातायात की कोई और व्यवस्था नहीं थी । बंजारों के पास लाखों की संख्या में बैल होते थे । वे बैलों की पीठ पर सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाते थे । मुगल काल के समय रसद पहुंचाने का काम ही बंजारा करते थे । लोक साहित्य में इस प्रकार का संदर्भ है । सेवामाया के जीवन गाथा में - कहा गया है :---

"चिणापट्टणाती लष्कर लादो ।"[3]

1- डा० श्याम परमार "लोक साहित्य विमर्श" पृष्ठ-141, सं०-1972

2- माल लादकर नायक का तांडा
भरके नमक ले आ रहा है ।

3- चिणापटम् गांव से लष्कर लाद चला, उसके साथ तांडा चला ।

लश्कर का सामान तथा रसद पहुंचाने का काम भी बंजारा जनजाति करती थी । सुमंगल प्रकास का कथन इस बात को और स्पष्ट करता है । 'मुगलों के जमाने में जब फौजें राजस्थान के रास्ते गुजरी थीं और बसती थी, इन बनजारे को उनकी रसद वहां तक पहुंचा देने के काम में लगाया जाता था ।'[1]

तात्पर्य यह है कि इनका व्यवसाय केवल माल पहुंचाना, रसद पहुंचाना और उसके लिये किराया लेना यहां तक ही सीमित नहीं था । बंजारा लोग कम कीमत में माल उठाते थे और उसे ज्यादे कीमत में बेचते थे, ऐसा संदर्भ लोक साहित्य में कम दिखायी देता है । 'तांडे लदो आव ', 'लदो चालो ' 'लदीं न चालो ' आदि शब्दों में माल ढो कर ले जाने के ही केवल संकेत मिलते हैं ।

(क) व्यापार का स्वरूप : व्यापार का स्वरूप बंजारा जनजाति में सामूहिक रहा है । चाहे सामान लादने का काम हो या रसद पहुंचाने का हो, वे नायक के आदेश परही चलते थे । बंजारों के विभिन्न तांडे व्यापार करते थे । एक तांडे में पांच-पचास परिवार होते थे, उनके बैलों की संख्या पर उन्हें पैसा दिया जाता था । व्यक्तिगत रूप में कोई परिवार व्यापार नहीं करता था । तांडे के साथ ही वे चलते रहते थे । मोटे तौर पर नायक ही एक तरह से ठेकेदार के समान था । जहां से माल लिया जाता और जहां पहुंचाया जाता था ऐसे बड़े व्यापारी के साथ नायक का महत्वपूर्ण संबंध होता था । तांडे के सामान्य आदमी को सिर्फ माल ढोने से मतलब रहता था ।

लोक साहित्य में अध्ययन के बाद इनकी आर्थिक स्थिति का इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है :

(1) नायक व कार्यभारी की आर्थिक स्थिति

(2) सामान्य जनता की आर्थिक स्थिति

1- सुमंगल प्रकास -राजस्थान ' पृष्ठ-40 संस्करण-1970, मूल लेखक -धर्मपाल हिन्दी- अनुवादक : सुमंगल प्रकास

(1) नायक व कार्यभारी की आर्थिक स्थिति : नायक व कार्यभारी तांडे के मुखिया तो थे ही, उसके साथ व्यापार में भी प्रमुख होते थे । इनकी आर्थिक स्थिति सामान्य जनता से भिन्न थी । एक तरह से सामान्य जनता का वे शोषण करते थे । एक लोक गीत इस प्रकार है :---

"तांडे उभो वाई नायक न्यावी ये
का गोरू रो सतावा छे रूखी वापूरे ।"[1]

इस गीत में एक नारी चक्की पीसते समय कहती है कि हमारे घर की गरीबी अवस्था कब जायेगी, आप तो नायक न्यायी हैं, फिर हमारी परीक्षा क्यों ले रहे हैं ?

तांडे के नियम तथा बंधन तोड़ने वालों से दण्ड के रूप में नायक तथा कार्यभारी पैसा लेते थे । तांडे के नामपर वे स्वयं पैसा बटोर लेते । इसके प्रति सेवाभाया नामक संत के शब्द प्रसिद्ध हैं, जो इस प्रकार हैं :---

"गोर गरीबेन दांन्न खाय, सात पीढ़ी नरके मां जाय ।
वंशेप कोई कोणी रीय राम" ।[2]

तात्पर्य यह है कि नायक तथा कार्यभारी की आर्थिक स्थिति उनकी अधिकारपूर्ण स्थिति के कारण ठीक थी । वे अपनी मान-मर्यादा के लिये सामान्य आदमी को दण्ड देकर पैसा निकाल ही लेते थे । इस प्रकार तांडा छोड़कर जाने में असमर्थ होने के कारण सामान्य जनता सारे अत्याचार सह लेती थी ।

(ख) सामान्य जनता की आर्थिक स्थिति : किसी भी जाति तथा समाज की आर्थिक अवस्था सामान्य जनता की स्थिति पर निर्भर करती है । बंजारा जाति के

1- तांडे के सामने न्यायी नायक खड़ा है ।
क्यों गरीब की परीक्षा तू ले रहा है ।

2- गोर गरीब जनता को दण्ड देकर धन कमाने से सात पीढ़ियां नरक जाती हैं । उसके वंश पर दिया जलाने वाला नहीं बचेगा ।

सामान्य जन की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रही । प्रतिष्ठित एवं अधिकार प्राप्त लोगों का एक सीमित वर्ग अवश्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कहा जा सकता है । आठ महीने कमाने और बरसात के समय चार महीने बैठकर खाने वाले समाज की आर्थिक स्थिति दयनीय ही हो सकती है । कितना ही कमाये तो भी चार महीनों में सामान्य जनता परेशान हो जाती । उसमें नायक व कार्यभारी द्वारा दिया गया कष्ट भी शामिल था । क्योंकि सब एक साथ ही रहते थे । नायक तथा कार्यभारी सामान्य जनता को ब्याज पर पैसा देते थे । बरसात में लिया हुआ कर्जा दिवाली को सूद के साथ लौटाना पड़ता था । सौ रुपये के सवा सौ तथा डेढ़ सौ रुपये देना पड़ता था । बंजारा जनजाति में कर्ज पर लिया हुआ पैसा न देना मानों अधर्म समझा जाता था । देवी की जब प्रार्थना वे करते उस समय लोकगीत में गाया जाता ---

"सावकारेर समनक रकाड
कचेरी रे पाचेन काड " ।[1]

परिवार की सारी स्थिति नारी को मालूम होती है । एक चक्की पर के गीत में उस परिवार की सारी अवस्था व्यक्त हुई है । वह लोकगीत इस प्रकार है :---

"हमारे ताल्या वाई जोगी आयो छ ये
सेर पसो लावूहूं फ रन खावू हूं
जोगीरे फ लीम काहीं लावू वाई य "

भावार्थ इस प्रकार है । दान धर्म करना मनुष्य की प्रवृत्ति है । वह स्त्री कहती है हमारे ताण्डे में भिक्षा के लिये जोगी आया हुआ है , मैं तो सेर पाव सेर लाकर उसे पीसकर बाल बच्चों को खिलाती हूं, ऐसी स्थिति में जोगी

1- देवी माँ साहूकार के सामने मुझे रख, मैं कर्जा चुका दूंगा ।
किन्तु कोर्ट कचहरी में मुझे मत जाने दे ।

के फरोठी में मैं क्या लाउं ? मेरे घर की गरीबी हट जानी चाहिए इसलिए वह आगे कहती है :

"थरे आंग वाईं तुलसी लगाईं थे
सांज परभाती वाईं पूजा करू छु थे"

अर्थात् गरीबी हटाने के लिये घर के सामने मैंने तुलसी लगाई है , सुबह-शाम उसकी पूजा करती हूं , किन्तु गरीबी जाति नहीं है । देव धर्म भी सब लाचार बन गये हैं । वह आगे कहती है "देव धरम वाईं लाचारी लैरे छ थे" [1]

एक दूसरे लोकगीत में उसकी आर्थिक स्थिति का वर्णन है । बहुत दिनों के बाद भाई - बहन के यहां मेहमान बनकर आता है । भाई को उस घर की स्थिति इस प्रकार की दिखायी देती है ---

"फारसी चादरी बैठेन दिनी
फुटोसे लौटा म जल दिनी बाईं थे ।" [2]

तात्पर्य यह है कि बंजारा जनजाति की आर्थिक स्थिति का वर्णन विभिन्न लोकगीतों में हुआ है । सामान्य जनता अपना पेट भरना ही मानों जीवन जीना समझती थी जबकि नायक तथा कार्यभारी की आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक थी ।

(4) <u>सामाजिक प्रथायें :</u> लोक साहित्य हमारे सामने लोक जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है । लोकजीवन में मनुष्य-जीवन की बहुत सी पद्धतियां व्यक्त होती रहती हैं जिनका अध्ययन करने से प्राचीन मूल्यों का पता चलता है । लोक-साहित्य मानव - जीवन के सारे प्रगट-अप्रगट व्यवहारों का दर्पण है । मराठी के प्रसिद्ध

1- देवी देवता गरीबी के सामने सर झुकाकर बैठ गये हैं ।

2- फटी हुई चटाई बैठा बैठने के लिये बहन ने दिया और फूटे हुए लौटे में पानी दिया ।

लेखक डा० मांडे कहते हैं - 'लोक साहित्य केवल शब्दबद्ध वाड्मयच नसते तर समाजात प्रचलित असलेल्या परम्परागत रूढ़ी आचार विचार या सर्वांचा त्यात समावेश हो तो' ।[1]

हर एक जाति तथा समाज में अपनी कुछ धारणायें तथा प्रथाएँ होती हैं जो परम्परागत रूप में समाज में चली आती हैं । कुछ प्रथायें समाप्त होती हैं तो कुछ नयी प्रथायें निर्मित होती हैं, जिनका मानव - जीवन में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में महत्व रहता है, तथा जो मनुष्य के जीवन को निर्धारित करती हैं ।

बंजारा जनजाति अपने दायरे में जीवन जीने वाली जाति रही है । अपनी प्राचीन प्रथा तथा रूढ़ियों को तोड़ना वह अधर्म समझती रही है । अन्य समाजों से दूर रहने की प्रवृत्ति होने के कारण प्राचीन रूढ़ियाँ तथा प्रथायें आज भी उसी रूप में बंजारा जनजाति में दिखायी देती हैं । बंजारा जनजाति की सामाजिक प्रथाओं के दो तरह से भेद किये जा सकते हैं : (1) सामाजिक प्रथायें (2) सामान्य प्रथायें ।

(1) <u>सामाजिक प्रथायें :</u> समाज कुछ तरह की प्रथायें निभाता है जिनका प्रयोजन समाज को ठीक तरह से संचालित करने के लिए ही होता है । विशेषतः आदिम तथा वन्य जातियों में सामाजिक प्रथायें कानून के समान दिखायी देती हैं । प्रथायें तोड़ने वालों को समाज दण्ड देता है तथा उन्हें जाति के बाहर भी निकाल देता है ।

(क) <u>कसल पुचेर (कुशल क्षेम पूछना) :</u> घर में मेहमान आये तो प्रथम उसे हाथ-पांव धोने के लिये पानी दिया जाता है । बाद में उसके सामने जल भरकर

1- 'लोक साहित्य सिर्फ शब्दबद्ध वाङ्मय ही नहीं होता, तो समाज में प्रचलित रूढ़ियाँ, प्रथाओं , आचार विचार इन सारी बातों का अध्ययन लोक साहित्य में होता है । '- (डा० प्रभाकर मांडे—'लोक साहित्य याचे अंतः प्रवाह - पृष्ठ- 1, संस्करण 1975

लोटा रखा जाता है । घर के वृद्ध अनुभवी लोग आकर बैठ जाते हैं । मेहमान व्यक्ति जल पीने से पहले कुशल क्षेम पूछता है । बंजारा बोली में वह इस प्रकार से कहता --- है :---

"आपलं माईं आलंद । सगा आलंद
रै कसल छ । आलंद छ । "[1]

घुम्मक्कड़ प्रवृत्ति होने के कारण अपने रिश्ते के लोगों से कब भेंट होगी इसकी कोई निश्चित तिथि नहीं थी । भेंट होना मानो वे दुर्लभ ही मानते थे । औरतें जब एक-दूसरे से हाल पूछती हैं तो, वे अन्य नारी के गले में हाथ डालकर रोती हुई अपनी बात कहती हैं । उसी तरह अन्य स्त्री भी अपने सुख-दुःख को रोते हुए गीतों में कहती है । आज भी यह प्रथा इस जाति में दिखायी देती है । एक ही तांडे में क्यों न रहती हों मेहमान बनकर आने पर रोते हुए अपना हाल बताती है । इस तरह यह एक कुशल क्षेम-पूछने की प्रथा बन गई है ।

(ख) <u>रोना सिखाने की प्रथा</u> : बंजारा जनजाति में इसे "हलंगो मोव्हर" या "हावलो" कहा जाता है । रोना सिखाने की प्रथा बंजारा जनजाति में ही दिखायी देती है । विवाह से पहले सुबह-शाम तांडे के वृद्ध तथा अनुभवी नारियां कुमारी लड़की को रोने की पद्धति का अभ्यास कराती हैं । यह सीखते समय कुंवारी लड़की विशिष्ट प्रकार की दुःख भरी ध्वनि निकालती है, जिसे "हं ढियूया "-- कहा जाता है । लड़की को रोते समय अपनी भावना भी व्यक्त करनी होती है । भाई के लिये इस प्रकार से वह अपनी भावना व्यक्त करती है ।

"मारो रे मारवाडी विरेलां हं ढियूया
पगली रे पैचाम छालन गोंफल रे
विरेलां हे ढियूया "

1- आप सब माईं आनन्द में है । सभी लोक मजे में हैं ।
सारे लोग ठीक है । सकुशल हैं ।

भावार्थ इस प्रकार है - "मेरे प्यारे मारवाड़ी भैयूया तूं अपनी पगड़ी में छुपाकर मुझे रख ले। मुझे क्यों विदा कर रहा है ?

जब लड़की की विदाई की जाती है तब वह माँ-बाप, बहन-भाई, सहेलियाँ आदि के गले में पड़कर फूट-फूट कर रोती है। रोते समय किसे क्या कहके या संबोधित करके रोना चाहिए, यह उसे सिखाया जाता है। तांड़े को छोड़कर जब वह जाती है तब इस प्रकार के लोकगीत में अपनी भावना व्यक्त करती है :---

"हवेली थे छियूयां
छूट चाली मारी याडी बापूरी हवेली "
आंग देखूछू तो टालो टालो दिकावच लार देखूछ तो
भरो भरो छं छियूया

भावार्थ इस प्रकार है- अपने प्यारे माँ-बाप की नगरी छोड़कर मैं जा रही हूं। आगे मुझे भविष्य खाली दिखाई दे रहा है। पीछे मुड़कर देखती हूं (अपने तांड़े को) तो हरा-भरा दिखायी देता है।

(ग) <u>न्याय पंचायत की प्रथा :</u> आदिम जातियों में न्याय पंचायत की अपनी परम्परा रही है। बंजारा जाति में इसे नसाब (न्याय) कहा जाता है। बंजारा जाति अपने सारे प्रश्नों के समाधान तथा न्याय-निर्णय के लिये पंचायत बिठाती है। कोर्ट-कचहेरी में जाना ये लोग अधर्म-समझते हैं। देवी की प्रार्थना में इस प्रकार का संकेत है --"कचेरी रे पाचेन काड याडी मराम्था "[1]।
जिसे न्याय चाहिए वह नायक के पास अपनी बात कहता है तथा नायक कार्यभारी को आदेश देता है और तब पंचायत बिठाई जाती है जिसका खर्च प्रथम न्याय मांगने वालों को करना पड़ता है। न्याय-पंचायत शुरु होने के पहले इस प्रकार से

1- कोर्ट कचहरी में देवी ! मुझे मत ले जा।

कहा जाता है :

"पंच पंचायत राजा मौजेर सभा
सभा लाख न सवा लाख "[1]

न्याय पंचायत में वादी-प्रतिवादी का कहना सुन लिया जाता है। बाद में नायक दोनों पक्षों से प्रश्न पूछता है। नायक, कार्यभारी तथा अन्य वृद्ध अनुभवी लोग जिन्हें बंजारा जाति में "डायें साठे" कहा जाता है- इनकी एक कमेटी बैठकर न्याय देती है। पंचायत-निर्णय दोनों ओर के लोगों को स्वीकार करना ही पड़ता है। आगे चलकर दण्ड या शिक्षा देना नायक तथा कार्यभारी का एक व्यवसाय बन गया। इसके प्रति सेवाभाया नामक संत के वचन प्रसिद्ध हैं ---- "गोर गरीबेन दाँन्न खाय
सात पीढ़ी नरके मा जाय।"

(2) सामान्य प्रथायें : लोक साहित्य के अध्ययन से किसी जाति या समाज की प्रथाओं, रूढ़ियों, आचार-विचार, खान-पान आदि का पता चलता है। मानव-जीवन के साथ सामान्य प्रथायें चली आती हैं। आगे चलकर ये प्रथायें मनुष्य के सामाजिक जीवन में आदत के समान बन जाती हैं। इसी बात को स्पष्ट करते हुए डा० सन्तराम अनिल कहते हैं --"लोकगीतों लोक-कथाओं, लोक कहानियों कहावतों पहेलियों सूक्तियों सभी में लोक का रहन-सहन खान-पान आचार-व्यवहार, प्रेम-वात्सल्य, करुणा-घृणा, विश्वास सबका स्वाभाविक आकलन होता है।"[2]

(क) बलि देने की प्रथा : बंजारा जनजाति में बलि चढ़ाने की प्रथा है। बलि देने से देवी-देवता प्रसन्न होते हैं --- ऐसी इनकी धारणा है। तांडे में कम से कम दो बार बलि देने की प्रथा है जिसे "समनक" कहा जाता है। जहाँ तांडा रुका जाता है वहाँ प्रथम धरती की पूजा के रूप में बकरा काटकर उसकी बलि

1- यह न्याय पंचायत राजा मौज की पंचायत है। यह सभा लाख सवा लाख की है। यहां न्याय दिया जाता है।

2- डा० सन्तराम अनिल -कन्नौजी लोक साहित्य - पृ०-31, सं०-1973

दी जाती है । जब तांडा उस जगह से चल पड़ता है तो उस समय बलि पूजा होती है । इसके अतिरिक्त तांडे में कोई आपत्ति आने पर भी बलि-पूजा होती है । बलि - पूजा के समय- इस प्रकार का लोकगीत प्रार्थना के रूप में गाया जाता है ।

"जय बोलो मरामा याड़ी सेन साई वेस
भुलो चुको माफ कर । ए कबुलो तारे
दरबार में मंजूर कर याड़ी ।"[1]

सेवाभाया नामक संत की जहां समाधि है, वहां रामनवमी को हजारों बकरों की बलि दी जाती है । अपनी मन्नत पूरी होने पर बंजारा वहां आकर बलि चढ़ाते हैं । मराठवाड़ा के परभणी जिले के कलमणूरी गांव में शिवरात्रि के समय हजारों बकरियों की बलि चढ़ायी जाती है ।

(ख) <u>जाति से बाहर करने की प्रथा :</u> समाज में कुछ रूढ़ियां ~~सैकड़ों~~ बहुत समय से चली आ रही हैं, जिनके तोड़ने पर जाति से बाहर करने की प्रथा बंजारा जनजाति में दिखायी देती है । यह सामूहिक रूप में शिक्षा या दण्ड देने की प्रथा है । बंजारा जनजाति में एक कहावत है :

"रोटी बेटी बन्द कर लो
पानी हुक्का बन्द कर लो"[2]

अपने समाज की आंतरिक व्यवस्था को तोड़ने की जो बात करता है, उसे जाति के बाहर निकाल दिया जाता है । क्षमा तथा दण्ड देने पर उन्हें जाति में शामिल किया जाता है जिसे मेलेर कहा जाता है ।

(ग) <u>ऊंच - नीच समझने की प्रथा :</u> व्यवहार में ऊंच-नीच समझने की प्रथा बंजारा जनजाति में दिखायी देती है । अपनी जाति को छोड़कर अन्य किसी भी

1- देवी तुम्हारी जय हो, यह प्रसाद अपने दरबार में स्वीकार करना भूल चूक माफ कर देना, देवी मां ।

2- खान पान, शादी विवाह न करना ।

जाति को वे गौर कहते हैं । अपने आपको "गोर" तथा अन्य जाति को वे "कौर" कहते हैं । तांडा एक व्यवस्था को रूप में चली आ रही एक प्रथा है । तांडे में ढाढी ढालिया नामक अन्य जातियां भी रहती हैं । ढाढी तथा ढालियों की जाति को निम्न जाति समझा जाता है । रोटी-बेटी व्यवहार इनमें नहीं होता । कहावत है "ढाढी घरे खीर अपलें काहीं ।"[1]

कामैर

बंजारों में लमान बंजारे भी अपने आपको श्रेष्ठ समझते हैं । आगे चलकर वे मथुरा में बस गये । इसलिये वे मथुरा लमान वे कहलाते हैं । तांडे में एक साथ रहते हुए भी शादी विवाह लमान तथा बंजारों में नहीं होते । तांडा जहां भी रुकता सबके आगे लमान लोग अपनी झुग्गियां डालते हैं । बंजारा जनजाति प्राय: मांसाहारी है, पर लमान शाकाहारी है, इसलिये ये अपने से अलग बंजारों को अपने से नीचा समझते हैं । तात्पर्य यह है कि बंजारा जनजाति में भी ऊंच-नीच की भावना व्याप्त है । ढाढी तथा ढालिया जाति के व्यक्ति ने "रामराम" कहा तो बंजारा लोग उसे रामराम न कहते हुए भोज कर कहते हैं । यह भावना अपने को श्रेष्ठ समझने की है ।

(घ) <u>धरती पर एक जगह न रुकने की प्रथा</u> : बंजारा एक घुम्मकड़ जाति है । यह घुम्मकड़ प्रवृत्ति आगे चलकर एक प्रथा ही बन गई है । तांडा एक जगह रुका हुआ है, तथा गांव के समान एक जगह बस गया है, ऐसा वर्णन कहीं भी लोक साहित्य में नहीं मिलता । एक जगह घर बनाकर रहना बंजारा जाति अधर्म समझती है । महान से महान व्यक्ति भी इस धरती को छोड़कर चले गये हैं, फिर यहां रुकना ही नहीं चाहिए, ऐसी बंजारों की धारणा बन गई है । जहां भी तांडा रुकता है वहां भोजन पकाने के लिये चूल्हा भी नहीं बनाया जाता । ये लोग तीन पत्थर रखकर उसपे खाना पका लेते हैं । ये लोग

1- ढाढी के घर की खीर हमारे क्या काम की ।

ज़मीन पर चक्की भी नहीं गाड़ते । तात्पर्य यह है कि ज़मीन पर स्थिर होकर रहने की बात इस समाज में दिखायी नहीं देती ।

"तांडो लाद चालो, अकेली न चालो
आधी आधी राते रो तांडो ये लादो" ।[1]

तात्पर्य यह है कि तांडा ज़मीन पर रुका हुआ है ऐसा लोक व्यवहार तथा लोक साहित्य में दिखायी नहीं देता है । इस जाति में बहुत सारी छोटी-मोटी प्रथायें चली आ रही हैं । जैसे अन्य समाज से चार हाथ दूर रहना, वेश-भूषा में परिवर्तन नहीं करना । हाथ-पांव और शरीर पर गोदना गुंदवाना घूंघर की प्रथा आदि ।

1- तांडा एक जगह से दूसरी जगह जा रहा है । आधी रात हो गई तो भी तांडा एक स्थान से दूसरी जगह जा रहा है ।

चौथा अध्याय

बंजारा लोक साहित्य और संस्कृति

संस्कृति का अध्ययन मनुष्य के लौकिक तथा अलौकिक जीवन का अध्ययन होता है । संस्कृति एक तरह से मनुष्य जीवन के मनोविज्ञान को व्यक्त करने का एक सशक्त साधन है । संस्कृति शब्द की व्यापकता में मनुष्य के सारे व्यवहार समाये हुए हैं । जिनके अध्ययन से मनुष्य की मूल प्रवृत्तियां तथा बदलते हुए विश्वासों का पता चलता है । तात्पर्य यह है कि संस्कृति मनुष्य जीवन में अदृश्य रूप में समायी हुई है । डा० मदन गोपाल संस्कृति के प्रति कहते हैं " मानव जीवन की संपूर्ण गतिविधियों का संचालन अंतर्वृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है, तथा जिसके अपनाने से वह सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है उसे संस्कृति कहते हैं ।"[1]

संस्कृति में लौकिक जीवन के साथ अलौकिक जीवन का भी संकेत मिलता है । जीवन में सुख तथा आनन्द की लालसा मनुष्य करता रहता है । जीवन में यदि वह प्राप्त नहीं हुई तो मृत्यु के बाद जन्म-मरण के फंफट से मुक्त होने का वह प्रयत्न करता है । यह प्रयत्न भी संस्कृति में आता है । किसी देश अथवा जाति का इतिहास वस्तुत: उसकी संस्कृति का इतिहास होता है । यह इतिहास मौखिक तथा शब्दबद्ध रूप में होता है । लोक साहित्य किसी जाति अथवा देश की संस्कृति का मौखिक इतिहास है । लोक साहित्य में संस्कृति प्राण के समान होती है । इसलिये डा० कृष्ण देव उपाध्याय कहते हैं कि "भारतीय संस्कृति का सच्चा तथा स्वाभाविक चित्र लोक-साहित्य में उपलब्ध है । लोक संस्कृति के वास्तविक रूप को देखने के लिये हमें लोक-साहित्य का अनुसंधान करना होगा ।"[2]

1- डा० मदन गोपाल "मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति पृष्ठ-1, संस्करण- 1968

2- डा० कृष्णदेव उपाध्याय "लोक साहित्य की भूमिका" : पृ०-293 संस्करण : द्वितीय, 1970

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम संस्कृति को अनेक रूपों एवं भेदों में विभाजित कर सकते हैं । मोटे तौर पर इस प्रकार से विभाजन किया जा सकता है :- (1) नागरी संस्कृति (2) ग्रामीण संस्कृति (3) आदिम जातियों की संस्कृति (4) घुम्मकड़ जातियों की संस्कृति ।

बंजारा जनजाति एक घुम्मकड़ जनजाति है । इसकी जीवन संबंधी अपनी मा मान्यतायें हैं । आज यहां कल वहां की प्रवृत्ति होने के कारण अस्थिर समाज में इनकी संस्कृति भिन्न हो सकती है । इनके रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास त्यौहार संस्कार आदि में इनकी विशिष्टता दिखायी देती है । अत: इनकी संस्कृति के सारे संकेत हमें इनके लोक साहित्य में दिखायी देते हैं ।

बंजारा जनजाति के धर्म के प्रति विभिन्न वाद उठाये जा सकते हैं किन्तु आज मोटे तौर पर यह जनजाति हिन्दु धर्म को अपनाती है । आदिम जाति होने के कारण तथा अनादि काल से धर्म परिवर्तन घटनायें घटित होने के परिणाम भी इस जनजातियों में दिखायी देते हैं । लोकसाहित्य में इनके रीति-रिवाज त्यौहार संस्कार देवी देवता आदि के संदर्भ दिखायी देते हैं । इनके प्रति वे आर्य थे या अनार्य आदि के प्रति विवाद है । बंजारा जनजातियों मे बौद्ध काल में बौद्ध धर्म अपनाया ऐसा संकेत भी मिलता है । इस्लाम धर्म इस देश में आने पर बंजारा जनजाति के कहीं परिवार मुस्लिम बन गये । इस प्रथा जैसे अन्य जातियों में भी दिखायी देती है । लोधा बंजारा तथा मुलतानी बंजारा की शाखायें आज भी मुस्लिम धर्म को मानती है । सर्व सामान्य बंजारा जातियों में भी मुस्लिम के संतों तथा पक्तों की वे पूजा करते हैं । महाराष्ट्र में कहीं भागों में मोहरम के समय बंजारों के शरीर में मुस्लिम के बाबा तथा अन्य संत साधु प्रवेश करते उस समय वे नाचते कूदते हैं ।

तात्पर्य बहुत सारे जातियों ने इस के सारे मुस्लिम धर्म उस काल में स्वीकार कर लिया था । उस समय बंजारा जनजाति के छोटे मोटे तांडों ने मुस्लिम धर्म अपनाया होगा । किन्तु आज भी मुसलमानों में बंजारे दिखायी देते हैं ।

सामान्य बंजारा और मुस्लिम बंजारों में रोटी बेटी व्यवहार होता नहीं है । शिख धर्म आने पर बंजारा जनजातियों के लोगों ने शिख धर्म का भी स्वीकार किया है । ऐसा कहा जाता है कि गुरु तेज बहादुर का सर लाखा बंजारा ने मुस्लिम के हाथ आने नहीं दिया । चांदनी चौक दिल्ली में पहले बंजारों के ताँडे रुकते थे । शिख धर्म आगे चलकर कहीं बंजारों ने स्वीकृत किया । आज पंजाब के बहुत सारे बंजारे सिकरी बंजारा करके पहचाने जाते हैं । वे सारे शिख धर्मीय हैं । लोक साहित्य में भी गुरु नानक संकेत आता है । गुरुबाबा के नाम से शादी में वे एक रुपया गुरु बाबा के नाम से चढ़ाते हैं । बंजारा जनजातियों में गुरु बनाने की प्रथा गुरु नानक से प्रारंभ हुई है । आज भी बंजारों में गुरुमंत्र संस्कार होता है । महाराष्ट्र बंजारा शिख अधिक नहीं है किन्तु इनके धार्मिक संस्थाओं में बंजारा जाति के लोगों को सन्मान के साथ लिया जाता है । तात्पर्य बंजारा तथा शिख अपने आपको गुरु-भाई मानते हैं । शिख बंजारा और सामान्य बंजारों में रोटी बेटी व्यवहार होता है ।

आगे चलकर इसाई धर्म इस देश में आया । उसका परिणाम भी इस जाति पर हुआ है । विशेषत: महाराष्ट्र के अहमदनगर जिलों में कई बंजारों के ताँडे इसाई बन गये हैं । किन्तु अपनी परम्परायें भी वे अपनाते हैं ।

तात्पर्य बंजारा जनजाति सभी धर्मों में दिखायी देती है । किन्तु उसकी संख्या अल्प स्वरूपों में रही है । सर्वसामान्य बंजारा जनजाति अपने आपको हिन्दू घोषित करती है । सारे हिन्दुओं के त्यौहार, संस्कार देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित है ।

(1) धर्म एवं धार्मिक विश्वास : बंजारा जनजाति के लोक साहित्य में इनके धार्मिक विश्वास दिखायी देते हैं । धर्म की व्याख्या करना कठिन कार्य है किन्तु मनुष्य जीवन के लौकिक अलौकिक संकेत धर्म में पाये जाते हैं । बंजारा जनजाति एक प्राचीन जाति है । भारत में विभिन्न धर्म संप्रदाय आये जिनके

प्रभाव अन्य समाज के समान बंजारा जनजाति पर भी देख जा सकते हैं । आज इनके लोक साहित्य में इस प्रकार के धार्मिक विश्वास दिखायी देते हैं :---

(क) धरती पूजा : बंजारा जनजाति धरती पर एक जगह स्थिर नहीं होती, किन्तु वह वर्षा के दिनों में एक स्थान पर रुक जाती है । जहां भी तांडा रुकता है, वहां प्रथम धरती की पूजा की जाती है । धरती पूजा के समय यह कहा जाता है ---

> ये धरती माता हाम तारे बालक छा
> छ भोग तु कबुल कर ।[1]

इनका विश्वास है कि धरती पूजा से पृथ्वी शांत होती है । भूत-पिशाच भी शांत हो जाते हैं । धरती की पूजा में काली छोटी बकरी, जिसे वे पाट कहते हैं, काटकर खून जमीन को दिया जाता है । तात्पर्य यह कि बंजारा जनजाति में धरती पूजा प्राचीन युग से प्रचलित है ।

(ख) गौपूजा: बंजारा जनजाति में गौपूजा प्रचलित है । अपना सारा व्यापार वे बैलों के सहारे ही करते हैं इसलिये गौ-माता को वे अपना धन मानते हैं । भूरे रंग की गाय को वे विशेष पवित्र मानते हैं । गौ-पूजा का वर्णन एक लोकगीत में इस प्रकार है :---

> ऊरे हुं गाई गौदन पुज
> लान धन देव देस याली यावली ।[2]

दीपावली के समय कुंवारी लड़कियां गाय की पूजा करती हैं । उसके बाद अन्य लोग गाय की पूजा करके प्रसाद गाय को देते हैं ।

1- हे धरती मां हम तेरे पुत्र हैं । यह प्रसाद तू कबूल कर ले ।

2- आओ ! सहेलियों हम गौ-माता की पूजा करें ।
गौ माता, हमारे तांडे को और धन दे ।

(ग) पितृ पूजा: बंजारों में पितृ पूजा प्रचलित है । दीवाली और होली के समय प्रथम पितृ पूजा होती है, उसके साथ अपने वंश के लोगों की भी पूजा की जाती है । दिवंगत पूर्वजों को जिस प्रकार का भोजन प्रिय था, वही भोजन प्रसाद के रूप में दिया जाता है । यह प्रसाद सात बार अग्नि में डाला जाता है । अग्निपूजा से इसका कोई संबंध नहीं है । पितृपूजा के बाद दीपावली तथा होली मनायी जाती है ।

(घ) देवीपूजा: बंजारा जनजाति में सात देवियों की पूजा की जाती है जिनमें मरामा, तुलजा, हिंगला, सती आदि देवी महत्वपूर्ण मानी जाती हैं । बंजारा जाति के कुल-गोत्र की अपनी देवी होती है ।

सेवाभाया नामक लोकगाथा में मराम्मा देवी की पूजा का संकेत आया है ।

आप मराम्मा कला फैलाई
छो बेन न साथ में लायी ।[1]

विशेष रूप से मरामा देवी की पूजा महाराष्ट्र के बंजारा अधिक करते हैं । देवी की पूजा अपनी मन्नत पूरी होने पर की जाती है । देवी को काली बकरी काटकर खून दिया जाता है । उस समय विशिष्ट प्रकार से पूजा की जाती है जिसे बंजारा जनजाति में चौको पूजेर कहा जाता है । सेवाभाया के गाथा काव्य में इस प्रकार का एक प्रार्थना गीत आया है :---

जै जै मराम्मा याड़ी
धौळे घोड़ार आसवार रैणो
--- इस प्रसाद आपेरे दरबार मै पूवलो काळी मराम्मा याड़ी ।[2]

1- मरामा देवी ने अपनी लीलायें प्रगट की छः बहनों को लेकर अवतार लिया है ।

2- जय हो देवी माँ, सफेद घोड़े पर आप सवार होती हैं । यह प्रसाद अपने दरबार में कबूल कर लेना, देवी माँ ।

(ङ) गुरुपूजा: बंजारा जनजाति में गुरु पूजा की परम्परा प्रचलित है। एक किम्वदन्ती है कि देमा गुरु नामक साधु ने बंजारा जनजातियों को गेंस का व्यापार करने के लिये मदद की हैं। शादी विवाह के समय इस देमा गुरु के नाम से एक रुपया लेकर प्रसाद दिया जाता है जिसे गुरु प्रसाद कहा जाता है। इस गुरु के प्रति एक कहावत इस प्रकार की है :--- यां गुरु जी ! तारी मोलीयारे रंगी लाल गुलाल गुरु की लाल गुलाल मूल्यवान वस्तु के समान है। बंजारा जनजाति के लोगों का विश्वास है कि गुरु नानके के संपर्क में आने के बाद गुरु मानने की परम्परा इस जनजाति में चल पड़ी है। वदाई नामक एक संस्कार के समय गुरुमंत्र दिया जाता है जो इस प्रकार है :---

मुंगे आवन्ना मोगरा तली आवन्ना वान
गुरु बावा सदा सदा तू जाणं। [1]

गुरु मंत्र विवाह के पूर्व दिया जाता है। उस समय लड़के की बाहु पर सुई तपाकर दाग दिये जाते हैं। इसके बाद ही विवाह संस्कार होता है। गुरु करने की परम्परा पुरुष वर्ग में ही दिखायी देती है।

(च) सेवाभाया की पूजा : बंजारा जनजाति में सेवाभाया नामक संत 16 वीं शताब्दी में हुआ है। कहा जाता है कि सेवाभाया मरामा नामक देवी की भक्ति करता था। देवी आगे चलकर प्रसन्न हुई और उसने सेवाभाया से विवाह के लिये आग्रह किया। सेवाभाया विवाह के लिये तैयार नहीं हुआ। ऐसी लोककथा बंजारा जनजाति में प्रचलित है। सेवाभाया ने "पोहरा उमरी" नामक ग्राम में समाधि ली है, जहां हर साल मेला लगता है। महाराष्ट्र तथा अन्य प्रांत के लोग इस मेले में

1- किसी ने तेरे पर वार किया तो वह तुझे मोगरा नामक फूल के समान लगेगा। जीवन में हमेशा तू गुरु का स्मरण करते रहना।

सेवाभाया की समाधि का दर्शन लेने के लिये जाते हैं । सेवाभाया की लोकगाथा बंजारा लोग गाते हैं, उनके कुछ विचार तथा दोहे इस प्रकार है :---

चारी छुटे रो काल आये
पच कुंल तारीये राम ।[1]

सेवाभाया की जीवन कहानी लोकगाथा के रूप में गायी जाती है । आजकल भी सेवाभाया के नाम पर विभिन्न प्रकार के धार्मिक गीत गाये जाते हैं । तात्पर्य यह है कि बंजारा जनजाति में सेवाभाया की पूजा श्रद्धा के साथ की जाती है ।

बंजारा जनजाति के धार्मिक विश्वास पूजा अर्चन की परम्परा प्राचीन काल से चलीआरही है । बंजारों में सफेद रंग धार्मिक विश्वास का रंग माना जाता है । सफेद रंग को वे पवित्र रंग मानते हैं । बंजारा लोक साहित्य में सफेद रंग का वर्णन धार्मिक गीतों में हमें मिलता है । एक उदाहरण लीजिए:--

धोले घोड़े रो आसवार रेणों
धोले गादी वालो सेवा भाया ।
धोले बंगला म बेठी मराम्मा ।[2]

धोले (सफेद) रंग का जहां भी देवी का मंदिर होता है, वहां सफेद झंडा लगाया जाता है । महाराष्ट्र के बंजारों में आजकल अन्य देवी देवताओं की भी पूजा अर्चा भी होने लगी है । हिन्दुओं के सारे देवी देवताओं की पूजा आजकल महाराष्ट्र के बंजारों में प्रचलित दिखायी देती है । लगभग चार सौ वर्षों से एक प्रांत में रहने के कारण इस प्रकार का परिवर्तन होना

1- (क) बैलों का अनाज समाप्त हो जायेगा । आपका व्यवसाय बंद हो जायेगा उस समय आपकी रक्षा कौन करेगा ।
(ख) आत्माराम राठौड़ श्रीसंत सेवादास लीलाचरित्र : पृ०-95, सं०-1973

2- सफेद रंग पर आप सवार होती हैं ।
सफेद गद्दी पर सेवाभाया बैठा है ।
सफेद मंदिर में देवी बैठी हुई है ।

स्वाभाविक है । रामकृष्ण के विभिन्न धार्मिक गीत आज बंजारा जनजाति में गाये जाने लगे हैं । महाराष्ट्रीय देवी देवताओं को बंजारा जनजाति ने अपना लिया है ।

महाराष्ट्र के बंजारा लोक साहित्य में बंजारों की संस्कृति का जो स्वरूप दिखाई देता है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी संस्कृति धर्म प्राण है, जिसमें अनेक अन्ध विश्वासों का बोल बाला है । उनके मंत्र-तंत्र जादू टोना, भूत पिशाच बाधा, शुभ अशुभ आदि के विचार व्यापक रूप से पाये जाते हैं । उनकी लोक कलाओं, जैसे कढ़ाई बुनाई की कला, इनके विभिन्न नृत्यों वाद्यों तथा लोक धुनों आदि का परिचय भी इनके लोक साहित्य से मिलता है ।

(ह) मंत्र तंत्र : आदिम जातियों में मंत्र तंत्र की प्रथा दिखायी देती है । ताँडे में मंत्र तंत्र जादू टोना जानने वाला व्यक्ति होता है, उसे भगत तथा जाणीया कहा जाता है । यह व्यक्ति भूत बाधा तथा अन्य छोटी मोटी बीमारी होने पर अपने मंत्रों द्वारा उसे दूर करता है । इसे बंजारा जनजाति में "हात देकर" तथा "दोरी वाले" कहा जाता है । यह व्यक्ति सप्तरंगी दोरा लेता उसपर कुछ मंत्र डालता और बाद में उस व्यक्ति के गले में तथा कमर में बांध देता । बंजारा जनजाति का अंध विश्वास है जिसके कारण आपत्तियां दूर होती हैं । जो जाणीया तथा भगत होता है, उसके शरीर में देवी अमावस तथा पूनम को प्रवेश करती तब वह जेय जेय मराम्बा यात्री कहते हुए अपनी सर हिलता है । जिसे बंजारा जनजाति में "सेलर" कहा जाता है । ताँडे में कुछ स्त्रियां ऐसी होती है, जो जादू टोना जानती हैं, जिसे "लाकणं" कहा जाता है । यह स्त्री आदमी का अच्छा बुरा कर सकती ऐसी धारणा इस जमाती है ।

(ज) शुभ - अशुभ : जीवन में बहुत सारी बातें घटनायें घटित होती है जिसका संबंध श्रद्धा के कारण अच्छा बुरा अर्थ निकाला जाता है । शुभ-

अशुभ देखने की प्रक्रिया को "समणं थालेर " कहा जाता है । थाली खड़ी करके पैसा लगना तथा चक्की उलटी सिधी घुमाना या बंजारा नारी के गले में एक हार होता है, उसे मुंगार हार कहा जाता , उसके सहारे भी शुभ-अशुभ देखा जाता है । प्राचीन काल में तांडे में एक बैल देवी के नाम पर छोड़ा जाता जिसे कट्यात्या तथा जाणीया कहा जाता है । वह नन्दी बैल तांडा व्यापार के लिये निकाला तो सबके सामने चलता । जहाँ वह रुक जाता तांडा रुक जाता । वह उठकर चलता तब तांडा चलता । सेवाभाया नामक संत के समय भी गराशिया नामक रैसा नंदी था । अन्य कई घटनायें शुभ अशुभ मानी जाती हैं ।

टिटवी नामक पक्षी तांडे में चिल्लाना अशुभ माना जाता है । रात में पक्षियों की आवाज अशुभ मानी जाती है । प्रेत यात्रा चलते समय सामने आना शुभ माना जाता । चलते समय सामने भरा हुआ पानी का घड़ा आना शुभ माना जाता है । इसके साथ छोटी मोटी घटनायें तथा संकेत इस जनजाति में प्रचलित है ।

निम्ब का पता पकड़ना - सौगन्ध खाना
चलते चलते ठेस लगना - कोई अपनी निंदा कर रहा है

(2) संस्कारों तथा त्यौहारों में बंजारा संस्कृति : संस्कृति में संस्कारों का अपना महत्व रहता है । जिस तरह के संस्कार किसी समाज में प्रचलित होते हैं, उस तरह का जीवन तथा उसकी जीवन पद्धति बन जाती है । संस्कार का अर्थ ही होता है संशोधन करना, उत्तम बनाना तथा पवित्र बनाना । समाज में विभिन्न संस्कार प्रचलित हैं । विशेषतः हिन्दू धर्म में सोलह संस्कार माने जाते हैं । डा० कृष्ण अवस्थी इस संस्कारों के ये भेद करते हैं :

(1) शारीरिक संस्कार (2) मानसिक संस्कार (3) नैतिक संस्कार
(4) आध्यात्मिक संस्कार तथा (5) सामाजिक संस्कार[1]

1- डा० कृष्ण अवस्थी : "वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन" पृष्ठ- 30, संस्करण-1978

जन्म से लेकर मृत्यु के पश्चात तक विभिन्न संस्कार किये जाते हैं। बंजारा जनजाति में विभिन्न संस्कार प्रचलित हैं, जिनका अध्ययन करने से इनकी संस्कृति का पता चलता है। अन्य जातियों में जो संस्कार प्रचलित है, उससे कुछ भिन्न स्वरूप बंजारा जनजातियों में प्रचलित संस्कारों का है।

(क) जन्म-संस्कार: हिन्दू धर्म के समान जन्म पूर्व संस्कार भी बंजारा जनजाति में प्रचलित है। गर्भ होते ही घर में पुत्र आना चाहिए, इसलिये विभिन्न देवी देवताओं की मनना की जाती है। गर्भवती नारी के भोजन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। एक कहावत है--"तारो मन बोटी मारी पर जावे लाज"। (तेरा मन मांसाहार करना चाहता है) मांसाहार की इच्छा लड़का होने का संकेत माना जाता है।

(ख) बदाई संस्कार: बंजारा जनजाति में लड़के का जन्म ताने का सौभाग्य माना जाता है। ब्राह्मण जाति में जिस तरह से जनेऊ संस्कार होता है। लगभग उसी प्रकार का एक संस्कार बंजारों में बदाई संस्कार मनाया जाता है। लड़का अभी बड़ा हो गया है, उसके उपर जिम्मेदारी डाली जा सकती है, ऐसा संकेत इसके पीछे रहता है। जिस तरह से सोना तपकर सोना कहलाता है, उसी तरह बदाई संस्कार के समय लड़के को सूई से दाग दिया जाता है। तात्पर्य यह कि यह बालक भी जीवन में तपकर निकलेगा। उस समय वृद्ध अनुभवी लोग आशीर्वाद देते समय यह लोक गीत गाते हैं :---

कोली आवे कोली जावे
कोली मां थी जग समाव।[1]

बंजारा जनजाति में बदाई संस्कार का बड़ा महत्व होता है। वृद्ध अनुभवी लोगों का आशीर्वाद लेकर नवयुवक जीवन जीता है।

1- इस जीवन की लाइनों में
सारा जग समाया हुआ है।

(घ) <u>विवाह संस्कार:</u> विवाह संस्कार एक सामाजिक संस्कार माना जाता है। बंजारा जनजाति में विवाह के विभिन्न छोटे-मोटे संस्कार होते हैं, जिनके द्वारा लड़के की शारीरिक मानसिक तथा बौद्धिक परीक्षा ली जाती है। विशेष संस्कार इस प्रकार के हैं। सास जवाँई की चोटी का पानी सात बार चोटी धोकर पीती है। इसके पीछे यह भावना है कि मेरी लड़की को दुःख नहीं देना। एक कहावत है :---

कपालेय तेल लगा लगा हॅं तू।

(भावार्थ : सर पर तेल मैंने लगाया) अर्थात् पाल पोसकर मैंने अपनी बेटी को बड़ा किया है। माँ ने तुझे बड़ा किया है। मेरी बेटी को कष्ट नहीं देना, मैं तेरी चोटी का पानी पीती हूं) चोटी का पानी पीना- नम्रता काप्रतीक माना जाता है।

इसके बाद लड़के के कान को कंकरे लगाकर उसे लड़की का भाई पूछता है- बोल कभी मेरे माँ बाप को गाली देगा ? शारीरिक संस्कार की दृष्टि से विवाह के समय लड़के को सार्वजनिक स्नान कराया जाता है (ताकि उसके स्वस्थ होने का पता सब को चल सके) तांडे की वृद्ध नारियाँ लड़के को नहलाकर उसके शरीर में शक्ति देती है, ऐसी धारणा है। स्नान होते ही शक्ति आ गई - यह समझकर तांडे की अन्य औरतें सब मिलकर लड़के को पानी में म गिराने की कोशिश करती हैं।

"नैतहू पडेा ये उतानो "- दुल्हा जमीन पर गिर गया है, ऐसा औरतें समझ लेती हैं। इसके बाद "मांग रमेर " नामक एक संस्कार होता है जिसमें दुल्हन तथा दूल्हे की बुद्धि तथा शक्ति, देखी जाती है।

इसके बाद "डोरलं बांधेर " नामक संस्कार होता है। सात रंग का डोरा लेकर लड़की तथा लड़के के हाथों पावों में बांधा जाता है। इसके पीछे यह धारणा है कि तुम्हारी जोड़ी सात जन्म तक बनी रहे। उस समय विवाह गीत गाया जाता है।

रायमल कांजी रे हाथे रो डोरलों
थूं छूटे ये लाम्बा।[1]

1- रायमल राजा के हाथ का यह बंधन है। यह इतनी जल्दी छूटने वाला नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बंजारा जनजाति में विभिन्न संस्कार प्रचलित हैं। हिन्दू धर्म के अधिकांश संस्कार वे अपनाते हैं, किन्तु उसके साथ अपनी घुम्मकड़ प्रकृति के कारण कुछ नये संस्कार भी उनमें प्रचलित हैं। जन्म से लेकर मृत्यु के बाद तक विभिन्न संस्कार मनुष्य जीवन में होते रहते हैं जिनका संबंध लौकिक तथा अलौकिक जीवन से होता है। कुछ संस्कार मनुष्य जीवन की सफलता के लिए होते हैं तो कुछ संस्कार सामाजिक बंधनों को दृढ़ करने केलिए होते हैं।

सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति त्यौहारों से भी होती है। अत: त्यौहारों का अपना महत्व होता है। त्यौहारों द्वारा धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ आनन्द तथा मनोरंजन भी मिलता है। अपनी प्राचीन परम्पराओं का अनुकरण भी त्यौहार द्वारा होता है। किसी देश के अपने त्यौहार होते हैं जिनके द्वारा उस देश की संस्कृति प्रगट होती है। जीवन के आदर्श भी त्यौहार द्वारा प्रगट होते हैं।

बंजारा जनजाति में दीपावली होली तथा तीज आदि प्रसिद्ध त्यौहार मनाये जाते हैं। दीपावली अमावस के दिन मनायी जाती है। जीवन का अंधेरा अब समाप्त हो गया, ऐसी इनकी धारणा है। चार महीने (बरसात के) बंठकर वे जीवन बिताते और दीपावली के बाद अपने व्यापार के लिये निकल पड़ते हैं। हिन्दू धर्म में दीपावली को लक्ष्मी पूजा की जाती है। बंजारा जनजाति में इनकी लक्ष्मी गौमाता मानी जाती है। इसी लिये वे लोग गौमाता की पूजा दीपावली के दिन करते हैं। अन्य समाजों के समान ये भी नये वस्त्र परिधान पहनते हैं, भोजन में भी विशेष भोजन पकाकर खाते हैं। बंजारा जनजाति में दीपावली व्यापार का शुभारंभ करने के लिए अधिक मनायी जाती है।

इस जनजाति का दूसरा महत्वपूर्ण त्यौहार होली है। होली वे सामान्य हिन्दू जाति के समान मनाते हैं। इस समय नाच गाने द्वारा अन्य जातियों के लोगों से वे चन्दा जमा करते हैं। पैसा जमा होने पर सार्वजनिक रूप में बकरा काटकर सार्वजनिक भोजन होता है जिसे वे "गेर" कहते हैं।

होलीके समय घर-घर जाकर आशीर्वाद लेने की प्रथा भी बंजारों में दिखायी देती है । एक विशेष बात यह है कि दो होली जलाई जाती है । होली दूसरे दिन सुबह - सुबह जलाई जाती है । यह त्यौहार अपने मन के भावों को प्रगट करने का एक त्यौहार है । इसके बहाने बंजारे अपनी शत्रुता भी भूल जाते हैं और नया-जीवन प्रारंभ करते हैं ।

इन लोगों में तीज नामक त्यौहार भी मनाया जाता है । तीज कुंवारी लड़कियों का विशेष त्यौहार होता है । तीज के समय बंजारे लोग अपने नाते के लोगों को बुलाते हैं । यदि वे नहीं आते तो तीज की निशानी भेज देते हैं ।

आजकल महाराष्ट्र के बंजारों में हिन्दुओं के सारे त्यौहार मनाये जाते हैं । महाराष्ट्र के अन्य त्यौहार में भी बंजारे उन्हें अपना त्यौहार समझकर माग लेते हैं । बैलोंका त्यौहार 'पोला ' महाराष्ट्र में मनाया जाता है । गणेश उत्सव भी मनाया जाता है । महाराष्ट्र के दीपावली होली के साथ, गुढी पाडवा, पोला, दसहरा नागपंचमी , गणेश उत्सव, वट पूनम, राखी आदि त्यौहार बंजारा जनजाति में आज प्रचलित हैं ।

(3) वेशभूषा: संस्कृति में वेशभूषा का अपना महत्व होता है । वेशभूषा के कारण देश-विदेश के लोग पहचाने जाते हैं । इतना ही नहीं , जाति तथा धर्म भी वेशभूषा से पहचाने जाते हैं । वेशभूषा संस्कृति का बाह्य प्रतीक समझी जाती है । जिस देश में लोग रहते हैं वहां के भौगोलिक प्रभाव भी उनकी वेशभूषा पर देखे जा सकते हैं ।

बंजारा जनजाति घुम्मकड़ जाति है किन्तु सारा देश घूमने के बाद भी इसकी वेशभूषा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । वेशभूषा के कारण आज महाराष्ट्र में बंजारा जनजाति दूर से पहचानी जाती है । वेशभूषा से पता चलता है कि बंजारा जनजाति राजस्थान की जाति रही होगी । व्यापार के लिए वह सारा

देश घूमती रही है । राजस्थानी वेशभूषा और बंजारों की वेशभूषा से इस जाति के प्राचीन सम्बन्ध का संकेत मिलता है ।

लाल रंग का आकर्षण: बंजारा जनजाति में लाल रंग अधिक चलन दिखायी देता है । बंजारा नारी अपनी वेशभूषा के लिये लाल रंग अधिक पसन्द करती है । इसका संकेत हमें लोक साहित्य में भी दिखायी देता है :---

लाल मारो लाल केकनो वाल सवारो मारो लाल

तथा-

थां वी गुरु हारे मोलीयारो रंगी लाल गुलाल[1]

बंजारा नारी के वेशभूषा के बारे में मराठी की लेखिका चंद्रकला नाईक कहती [2] "बंजारा स्त्री नेहमीच नटून सजून जणू काहीं स्टेज पर नाचण्या करीता सज्ज आहे"

नारी की वेशभूषा: वह लाल रंग का दस पंद्रह मीटर का घाघरा पहनती है । जिसे बंजारा बोली में "फेटीया" कहा जाता है । अधिक बड़ा घागरा पहनना मान मर्यादा की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है ।

मसरु रो फेटीयां सिला दरे

वीरेणां[3]

बंजारा नारी ने अपने पहरावे में कोई परिवर्तन नहीं किया मालवा की नारी चूड़ी पैजामा के उपर आज भी घाघरा पहनती है ।

1- लाल मेरे लाल मित्र सेकल्ने अपनी लटें संवारी है ।
हां गुरु तेरी मूल्यवान लाल रंग की गुलाल उड़ रही है ।

2- (क) बंजारा स्त्री हर समय ऐसी दिखायी देते हैं कि अभी स्टेज पर नाचने जा रही है ।

(ख) चंद्रकला नाईक "बंजारा स्त्री काल आज आणि उमा" मराठी लेख- विमुक्त जन त्रैमासिक , संपादक -सरेश पुरी, अप्रैल में जून 1978

3- मसरु नामक कीमती वस्त्र का घाघरा मुझे सिलवा दे भैया ।

काचली : रंगी बिरंगी कपड़ों का वह ब्लाउज पहनती हैं जिसे काचली कहा जाता है। काचली पर विभिन्न प्रकार से वह बुनाई करती हैं। छोटी-छोटी आरसी लगाकर छाती तथा बाहु पर लगवाती है। काचली की दो डोरी होती हैं जिनके सहारे वह काचली को पीछे बांधती है। आजकल हिन्दी चित्रपट में इस प्रकार की चोली अधिक दिखाई जाती है। चोली का वर्णन लोकगीत में इस प्रकार है :---

काचली सिमारे छुसी बलंजारा।
काचली प धुमै मचीरे बंलजारा।[1]

ओढणी: तीन चार मीटर की विशेषतः लाल रंग की ओढ़नी वह पहनती हैं। ओढ़नी परसुके सुन्दर बुनाई का काम होता है। घूंघट की प्रथा बंजारा जनजाति में प्राचीन काल से प्रचलित है। आज भी महाराष्ट्र के अनेक भागों में घूंघट की प्रथा दिखायी देती है। सेवाभाया की गाथा में भी घूंघट का संकेत मिलता है। वह इस प्रकार का है :---

माता धरमनी सत्वा हातेरो घुंघटो काढी।[2]

ओढ़नी का तथा घूंघट का वर्णन लोक गीतों में मिलता है। एक उदाहरण लीजिए :---

माथेप ओढणी न ओढ़णीन घुंघटो
मन आयदो मढ़र ले मा ये।[3]

1- शौकी बंजारा मुझे चोली सिलावा दे। जिससे तांडे में धूम मच जायेगी।
2- माता धरमणीं ने सवा हाथ का घूंघट निकाला
3- मेरे माथे पर ओढणी और उसे घूंघट भी ओढ़ा है, मुझे अपने मढ़ों में अब आने दो।

आभूषण : आदिवासी तथा अन्य जातियों की नारियों में आभूषण का आकर्षण अधिक दिखायी देता है । आभूषण नारी की प्रिय वस्तु मानी जाती है । नारी का स्वभावत: ही आभूषण के प्रति प्रेम होता है, चाहे वह नारी किसी जाति की क्यों न हो । नारी के वस्त्र तथा आभूषण प्रियता के बारे में डा० एस० एन० प्रसाद कहते हैं कि "स्त्रियां प्रारंभ से ही सौन्दर्य की उपासिका रही हैं । वस्त्रों ने उनकी इस मधुर भावना के प्रसार में सुयोग दिया है । उन्होंने वस्त्र के माध्यम से चित्ताकर्षक तथा शृंगार प्रसाधनों के सहयोग से चिर सुन्दर रहने की चेष्टा की है ।"[1]

यही बात बंजारा नारी में भी दिखायी देती है । बंजारा नारी के शरीर पर पांच किलो तक गहनों का बोझ दिखायी देता है । हर एक गहना अपना महत्त्व रखता है । सर से पांव तक वह गहने पहनती है ।

सर पर छोटे सींग भूरीया नामक गहना

कान	-	कनिया नामक गहना
गले में	-	आसली, मुंगार हार, साकली आदि
छाती पर	-	आरसी
बाहु पर	-	बोंदलू कन्या कल्ला नामक गहना
हाथ में	-	हस्तीदंत की चूड़ियां
अंगुलियों में	-	फल्या, छटी नामक गहना
पांव में	-	वाकली, कस, कल्ला आदि गहने
पांव की अंगुलीयों में	-	चटकी, चिटी आदि गहने
सौभाग्य गहने	-	घुंगरी नामक गहना अपने बालों से दोनों गालों पर बांधती हैं । उसके साथ दो-दो टोपली नामक

गहना भी वह पहनती है । दोनों गालों पर घुगरी बाहु में बोंदलू नामक गहने सौभाग्य गहने माने जाते हैं । अपने सर पर चांदी तथा लकड़ी के छोटे छोटे सींग वह गहने के रूप में लगाती है । सींग सर पर लगाने की प्रथा सिंधु संस्कृति में

1- डा० एस० एन० प्रसाद "कथासारित्सागर तथा भारतीय संस्कृति पृष्ठ- 126, संस्करण - 1978

दिखायी देती है । ए० एल० भाा सींग लगाने की प्रथा के बारे में कहते हैं - "हड़प्पा और मोहनजोदाड़ो की मूर्ति कला में सींग वाले देवताओं की मूर्तियां मिलती है ।"[1] बंजारा नारी आज भी सींग लगाती है । खानदेश भाग में बंजारा नारी एक सींग लगाती है । इसीलिए इन्हें सींग वाले बंजारे भी कहते हैं ।

अपने बाल भी वह कलात्मक ढंग से संवारती हैं । चोटी को पीछे लेकर उसमें भी एक वारी नामक गहना जोड़ देती है । वारी लाल रंग के ऊन के धागा से छोटे फूल के समान बनाया जाता है । इस वारी को एक छोटा सा पर्स के समान पोतल्या नामक गहना भी वह जोड़ती है ।

बंजारा नारी की वेशभूषा से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह कुंवारी है या विधवा या सौभाग्यवती है । कुंवारी लड़कियां काचली वाकली घुघरी बोदली नहीं पहनती, उसकी जगह चोली, फागन्या टोपली आदि गहने वह पहनती हैं । उसके ये गहने विवाह के समय निकाल जाते हैं । उस समय का एक लोकगीत इस प्रकार है :---

मारी पगेरी गरधणीं मत तोड़ो सांथ भारी
मारी तुटीये तो जन्मेरी तुटीयें तुम्हारी
तुटीये तो पेरान बांधली जो सांधणों ।[2]

पुरुष की वेशभूषा समान्य होती है । प्राचीन काल से कमीज़ की जगह वह बाराबंडी नामक वस्त्र पहनता है । धोती सर्व सामान्य रूप से पहनी जाती है । हाथ तथा कानों में वह आभूषण पहनता है । हाथ में कलड़ा और कान में वह वाली पहनता है । कभी - कभी वह कमर में सांकली नामक आभूषण

1- डी० एन० भा- प्राचीन भारत, एक रूपरेखा (अंग्रेजी)
हिन्दी अनुवादक- कन्हैया : पृष्ठ-15, संस्करण-1977

2- प्यारी सहेलियां मेरे हाथ से बांधी हुई गरधली मत तोड़ो,
मेरी टूट जायेगी तो जन्म से छूट जायेगी तुम्हारी टूट गयी तो
पिरोकर बांध लोगी ।

भी पहनता है । पारा नामक धातु की लड़ी भी वह बांधता है । बंजारा जनजाति में पारा नामक धातु के पांच तोले भी पारा कमर पर बांधना धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है । सर पर वह पगड़ी बांधता है । पगड़ी के संबंध में एक लड़की बिदाई गीत में गाती है :---

पग लीरे पेचाम घालन वोकरे
वीरेणां ब दिय़ूया [1]

तात्पर्य यह है कि बंजारा जनजाति में वेशभूषा तथा आभूषण को भी धार्मिक दृष्टि से देखा जाता है । शायद इसी कारण प्राचीन वेशभूषा को बंजारे लोग अभी तक अपनाते चले आ रहे हैं । वेशभूषा में परिवर्तन उनके लिए अधर्म के समान है । शिक्षित बंजारों में प्राचीन रूढ़ियों के प्रति उपेक्षा भाव पाया जाता है और वे पश्चिमी वेशभूषा को अपनाने लगे हैं ।

(4) रहन-सहन और खान-पान : आदिम तथा अन्य जातियों में शिक्षा के अभाव के कारण रहन-सहन के ढंग में परिवर्तन दिखायी नहीं देता है । सारा देश घूमकर भी बंजारों के रहन-सहन में बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है । अज्ञान तथा अंध-विश्वासों के कारण अपने रहन-सहन में परिवर्तन करना वे अधर्म मानते हैं । वे स्वयं को अन्य जातियों से भिन्न समझते हैं । डा० श्याम परमार कहते हैं कि अपनी वेशभूषा रहन-सहन और रंग रूप के कारण आज बंजारे अपने अस्तित्व को अन्य जातियों से पृथक घोषित करते हैं ।[2] बंजारा जनजाति अपने आपको गोर समझती हैं । अन्य किसी भी जाति के मनुष्य को वह कोर कहती है । कहावत है ।

गोर लावलों गोर कोर कलेन वीचो [3]

बंजारों के तांडे जहां भी रुकते थे वे नगर व ग्राम से दूर पहाड़ियों के पास रुकते थे । रास्ते में चलते चलते गांव आ गया तो उसे देखकर ही अपनी रास्ता बदल लेते थे । दूसरों से अलग अलग रहने की प्रवृत्ति के कारण इनके रहन-सहन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है ।

1- भैय़ूया अपने पगड़ी के गिरह लगाकर मुझे रख ले ।

बंजारा जाति मूलत: मांसाहारी रही है । जंगल और पहाड़ियों में रहने के कारण शिकार करके मांसाहार करने के पद्धति बंजारों में विकसित हुई होगी । मांसाहार में जंगली प्राणियों में सुअर, खरगोश, हिरणी, पक्षियों में तीतर आदि शिकार करके वे खाते हैं । शिकार को वे "मैड़ रमैर " कहते हैं । एक लोकगीत में शिकार करने का संकेत है , इस प्रकार है :---

उचे गढ़री लौरी येड़ी या रे
ससिया मार लायो [1]

मांसाहार बंजारा जनजाति में सार्वजनिक भोजन के रूप में भी किया जाता है जिसे वे गोठ, गैर तथा समनक कहते हैं । मांसाहार के प्रति लोकगाथा में इस प्रकार संदर्भ आता है :----

एक नली न सौ पोली
--- तू काहीं समफच गोली [2]

बोटी माटी बाटी (बोटी-मांस, बाटी-रोटी) नामक इनका प्रमुख आहार है । रोटी और मांस हुआ तो अन्य पंच पकवानों की इन्हें आवश्यकता नहीं होती । मांसाहार के विभिन्न प्रकार बंजारों में प्रचलित है । जैसे नारोजा, सलोई, बोटीर नंगावल आदि । वे ज्वारी तथा गेहूं की रोटी प्रमुख रूप से खाते हैं । रोटी को वे बाटी कहते हैं । रोटी पकाने का इनका अपना तरीका है । अंगार पर रोटी भुंजकर खाना वे अधिक पसन्द करते हैं । मिष्ठान में गुड़ तथा चने दाल से रोटी बनायी जाती है जिसे वे पोली कहते हैं, । वे खीर लापसी, लाडू, कलाव आदि मिष्ठान खाते हैं । मेहमान के आगमन तथा त्योहारों के समय मिष्ठान्न बनाया जाता है । अपने हाथ पर गेहूं के आटे की पतली रोटी तेल

2- ऊंचे गढ़का लड़का बड़ा शिकारी है, जिसने

2- डा० श्याम परमार- लोक साहित्य विमर्श " में एक निबन्ध - "घुमन्तु बंजारों के लोकगीत " पृष्ठ-141, संस्करण-1972

3- गैर, गैर ही है, अपने में परिवर्तन करके और क्यों बनते हो ?

1- उचे गढ़का लड़का बड़ा शिकारी है, जिसने खरगोश का शिकार किया है ।

2- मांस का एक टुकड़ा सौ पोली के बराबर है, यह खाने वाला गोलियों को क्या समझता है ।

लगाकर बंजारा नारियाँ विशेष प्रकार से बनाती है जिसे पातली बाटी कहा जाता है । एक कहावत इस प्रकार है :---

पातली बाटी, लाव गौरमाटी --[1]

बंजारों में मद्यपान सार्वजनिक रूप से प्रचलित है । इस जाति का कोई त्यौहार तथा संस्कार मद्यपान बिना नहीं होता । वे खुद शराब निकालकर पीते हैं जिसे वे फूल दारु या "पैली धारेर" कहते हैं । मेहमान आने पर प्राचीन काल में शराब देकर उसका स्वागत होता था । आजकल भी बंजारा जाति में मद्यपानकी प्रथा कम नहीं हुई है । मद्यपान नारियाँ भी करती हैं । एक कहावत इस प्रकार की है । "कंवोली नली-जोई भिदी भाई ".[2]

पान तम्बाखू खाने की प्रथा बंजारा जनजाति में प्राचीन काल से प्रचलित है । विशेष रूप से धार्मिक पूजा अर्चा में पान और सुपारी देवी-देवताओं को चढ़ाई जाती है । आजकल पान तम्बाखू बंजारा स्त्री और पुरुष भी खाते हैं । हुक्का पीने की प्रथा प्राचीन काल में थी । शादी विवाह में पान सुपारी मान मर्यादा के रूप में दी जाती हैं । बंजारा जाति में पान खाने की पहेलियाँ हैं, जिन्हें "पान के वात" कहा जाता है । एक उदाहरण लीजिए :---

के तैली रंगी पागड़ी रंगे चने मुँगा ।
रतन गढ़ेरी सपारी, चम्पा गढ़ेरो पान
पान के मन घणोंच मान । सपारी के मै नाजूक
पुतली । तम मनसे करु वार तुलनी । लौंड़े के संग

1- पतली गेहूं की रोटी सिर्फ गोर बंजारा ही खाता है ।

2- शराब और मांस भाई भाई को अलग अलग करती है ।

चम्राद् बतियाँ रंग । छुंग चवलीया । तोल्न मैं कल

वैतद् उभी मानैसी । छौ सगा पान मानैती ।[1]

(5) बंजारी बोली का स्वरूप : संस्कृति में भाषा का अपना महत्व होता है । रीति रिवाज परम्परा संस्कार आदि के संदर्भ में शब्द बनते रहते हैं । मनुष्य अपने सारे व्यवहार आज भाषा की माध्यम से व्यक्त करता है । मनुष्य की अन्य विकास की तरह भाषा विकास भी महत्वपूर्ण रहा है । सीताराम लाल्स ठीक ही कहते हैं कि " मनुष्य की भाषा उसकी सृष्टि के आरंभ से अविरत गति से प्रवाह रूप में चले आ रही है ।"[2]

बंजारा एक घुम्मकड़ जाति रही है । प्राथमिक अवस्था में वह किसी क्षेत्र में स्थिर रही होगी । वह क्षेत्र राजस्थान था, पर बंजारा जनजाति के मूल स्थान के बारे में आज खोज की आवश्यकता है । बंजारा जाति सारे देश में आज लगभग दो करोड़ है । अपनी वेशभूषा के कारण यह जनजाति अन्य लोगों से अलग दिखायी देती है । इनके सम्पर्क में आने के बाद इनकी अपनी विशिष्ट बोली का ज्ञान ज्ञात होता है । जो सारे भारत में बोली जाती है । जिसे बंजारा लोग गोर बाली तथा गोरमाटी कहते हैं । उत्तर भारत का बंजारा व्यक्ति दक्षिण भारत के व्यक्ति से आज भी अपनी गोर बोली में बोल लेते हैं । इस बोली को लमानी बोली भी कहा जाता है ।

1- (क) इसका भावार्थ इस प्रकार है : रंगी बिरंगी लाल पगड़ी बांधकर अपने मुंह को रंगाकर बैठे हो । रतन गढ़ की सुपारी, चम्पा गढ़ का पान है । पान कहता है मुझे अधिक सभा में मान है । सुपारी कहती है मैं तो तन मन धन लोहसंग अर्पण करती हूं । लौटे टुकड़ों में आ जाती हूं । चूना चर-चर करता है । कात भी इधर उधर की बात करता है । पान कहता है मुझे सबसे मान अधिक है सारी बत्तीसी रंग देता हूं । दूल्हा कहा है- शान से लो भाई पान अब मान से ।

(ख) यह गीत मैंने नानू सींह जाधव ग्राम कन्नैर जिला औरंगाबाद के सौजन्य से टैप किया है । लेखक ।

बंजारा बोली के प्रति भारतीय भाषा विज्ञान के ग्रंथों में निर्देश दिखायी देता है । ग्रा० ग्रियर्सन ने 1921 की जनगणना के आधार पर भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण किया था । उनके अनुसार इस देश में 179 भाषाएं और 544 बोलियां बोली जाती हैं ।[1] जिसमें लमानी तथा अन्य घुम्मकड़ जातियों की व बोलियों की चर्चा भी इन्होंने की है । ग्रा० भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि 'लमानी, पंजाबी तथा गुजराती, पंजाब तथा गुजरात में प्रयुक्त बंजारी एक बोली है । भाषा सर्वेक्षण के ग्रा० ग्रियर्सन के आधार पर बंजारी बोली बोलने वालों की संख्या 23733 थी ।[2]

बंजारी बोली का संकेत राजेन्द्र द्विवेदी ने भी अपने ग्रंथ में किया है । वे कहते हैं कि लंबाड़ी आदिम जाति की भाषा तथा उपभाषा बोलने वाले कुल जन संख्या 628166 है । इसमें दक्षिण भारत में 74754 तथा मध्य भारत में 553412 है ।[3] ग्रा० प्रेमनारायण टण्डन बंजारी बोली को लमानी ही मानते है । उनका कहना है कि संपूर्ण भारत में बंजारी तथा लमानी बोलने वालों की संख्या 332317 रही है ।[4]

बंजारी बोली के प्रति भाषा वैज्ञानिक ढंग से अभी तक अध्ययन नहीं हुआ है । बंजारा जनजाति राजस्थान की मूल जाति रही है । बंजारों के रीति-रिवाज तथा रहन-सहन का ढंग राजस्थानी संस्कृति का ही एक रूप है , ऐसा आज भी दिखायी देता है । सीताराम लालस बंजारी बोली को राजस्थानी भाषा की

2- सीताराम लालस 'राजस्थानी सबद कोश' : पृष्ठ-3, संस्करण-1961

1- ग्रा० ग्रियर्सन 'भारत का भाषा सर्वेक्षण 'खण्ड-1, भाग-1
हिन्दी अनुवादक : उदय नारायण तिवारी, पृष्ठ-122, संस्करण-1959

2- ग्रा० भोलानाथ तिवारी: भाषा विज्ञान शब्दकोश 'पृ०-572, सं०-1964

3- राजेन्द्र द्विवेदी, भाषा शास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश'
पृष्ठ- 226, संस्करण-1963

4- ग्रा० प्रेम नारायण टण्डन : ब्रजभाषा सूरकोश ' पृष्ठ-1187, सं०-1962

एक उपबोली मानते हैं । अपने ग्रंथ में इस प्रकार का वर्गीकरण वे करते हैं ।

राजस्थानी भाषा

- मारवाड़ी — थली मारवाड़ी मेवाड़ी
- केन्द्रीय — जयपुरी हाड़ौती पश्चिमी हिन्दी
- उत्तर पूर्वी — मेवाती अहीरवाटी
- मालवी — रांगड़ी निम्बारी
- लम्भानी बनजारी [1]

जंगल और पहाड़ी बोलियों का जिक्र डा० भोलानाथ तिवारी ने भी किया है । राठौड़ की बोली पंवारों की बोली ऐसा भेद किया है ।[2] तात्पर्य यह है कि बंजारा जनजातियों में पवार तथा राठौड़ महत्वपूर्ण गोत्र रहे हैं । अन्य बंजारा गोत्र से राठौड़ पंवारों की संख्या भी बंजारा जनजातियों में अधिक दिखायी देती है ।तिवारी जी ने इस आधार पर बंजारी बोली की चर्चा की होगी । एक बात स्पष्ट दिखायी देती है, कि बंजारी बोली में राजस्थानी भाषा के 75 प्रतिशत शब्द दिखायी देते हैं । एक जगह स्थिर न होने के कारण बंजारों की जनगणना पूरी तरह से हुई नहीं है । जिसके कारण बंजारी बोली वालों की जनसंख्या स्पष्ट हो नहीं पायी है । दूसरी बात बंजारे भारत के सभी प्रांतों में लगभग रहते हैं, अपनी मातृभाषा के प्रति जब इन्हें पूछा जाता है तो कभी-कभी वे प्रांतीय भाषाओं का नाम बता देते हैं । जैसे महाराष्ट्र में बंजारा जनजाति के लोग मराठी को अपनी मातृभाषा समझ लेते हैं । डा० ग्रियर्सन ने अपने ग्रंथ में अवर्गीकृत भाषाओं की चर्चा की है । उसमें जिप्सी तथा अन्य घुम्मकड़ जातियों की भाषा की चर्चा की है । बनार बैकाड़ी बेलदार भाम्टी लाड़ी औड़की जंगल पहाड़ियों में रहने वाली अनेक जनजातियां अपनी गुप्त बोली में बोल लेते हैं । लभानी बोली का प्रथम उल्लेख करते समय डा० ग्रियर्सन कहते हैं कि "--बालाघाट जिले के उत्तरी तथा पूर्वी भागों में लभानी बोली बोली जाती है ।[3]

1- सीताराम लालस राजस्थानी सबद कोष: पृष्ठ-5, संस्करण-1962

2- डा० भोलानाथ तिवारी "भाषा विज्ञान" पृष्ठ-53, संस्करण-1964

3- डा० ग्रियसन "भारत का भाषा सर्वेक्षण (खण्ड-1, भाग-दो)

सारे प्रांत घूमने के कारण अन्य भाषा तथा बोलियों का परिणाम भी बंजारी बोली पर होना स्वाभाविक है। विशेष रूप से महाराष्ट्र में बंजारी बोली पर मराठी भाषा का परिणाम होने से देवनागरी लिपि में बंजारी बोली के विभिन्न गीत आज लिखे जा रहे हैं। तात्पर्य बंजारी बोली पर महाराष्ट्र के समान अन्य प्रांतों में भी परिणाम दिखायी देते होंगे।

<u>बंजारी बोली : कुछ विशिष्टताएं :</u>

(1) महाप्राण तथा कठोर वर्णों की अधिकता- रासो काव्यों की भाषा के समान बंजारी बोली में कठोर वर्ण का प्रयोग होता है। जैसे ट ठ ड ढ ण आदि।
ऐसे कुछ शब्द इस प्रकार है - डोंगर (पहाड़) डोकरा (बूढ़ा) धालो (सफेद) डाँगरी (औरत) डांकणी (दिया)

(2) अनुस्वार प्रयोग की प्रचुरता - बंजारी बोली में राजस्थानी भाषा के समान अनुस्वार का प्रयोग होता है।
ऐसे कुछ शब्द देखिए-- पाणीं (पानी) गोंणी (औरत) तोनं (तुम्हें) मनं (मुझे) आणंदलो (आन्धा)

(3) नाम के सामने सिंह लगाने की परम्परा-बंजारी बोली में राजस्थानी भाषा के समान नाम के साथ सिंह लगाने की परम्परा है। जैसे रामसिंह,नानुसिंह,देवसिंह,मोती सिंह आदि।

(4) अर्थ की स्पष्टता के लिये और शब्द जोड़ना- किसी भी शब्द का अर्थ अधिक स्पष्ट होने के लिये उसके अन्त में सार्थक अर्थ का शब्द जोड़ा जाता है।
जैसे देखिए - धालो(सफेद)- धोलोधप (बिल्कुल सफेद) काली (काला) कालोभूर (बिल्कुल काला) लालो (लाल) लालोचटक (बहुत ही लाल) हारो (हरा) हारोगार (बिल्कुल ही हरा) पिलो (पीला) पीलोचटक (बिल्कुल पीला)।

हिन्दी अनुवादक उदय नारायण तिवारी : पृष्ठ-318, सं0-1959

(5) आदरसूचक शब्द का प्रयोग नहीं होता- बंजारी बोली में अंग्रेजी भाषा के समान आदरार्थी शब्द का प्रयोग नहीं होता है । तारो नाम काईं छ (तुम्हारा नाम क्या है)

(तारो नाम काईं छ (आपका नाम क्या है)

(6) एक शब्द के लिये कई रूप- बंजारी बोली का शब्द संग्रह कम होते हुये भी एक शब्द के लिये अनेक शब्द का भी प्रयोग होता है । जैसे डूंगर गटला (पहाड़ के लिये) (औरत के लिये- लाड़ी गोंणी बीर

(7) अनेकार्थी शब्द का प्रयोग - अन्य भाषा के समान बंजारी बोली में शब्द संग्रह सीमित है । इसलिए एक ही शब्द से अधिक अर्थों में काम लिया जाता है । जैसे देखिए : कतरा (कुत्ता) कतरा(कितने) मरु (मरु क्या) मरु (मैं रहूं क्या) वाक्य की संदर्भ से अर्थ निकाला जाता है ।

(8) न की जगह ण का प्रयोग - राजस्थानी भाषा के समान न जगह ण का प्रयोग अधिक होता है ।

कान (काण) मन (मण) नाना (णाना) मान(माण)
खान (खाण)

(9) अंत्य व्यंजन का लोप - बंजारी बोली में अन्त्य व्यंजन का भी लोप हो जाता है । जैसे देखिए -

सत्य - सत , निम्ब - नीम
जीव - जी

(10) जोड़ादार से एकादार - बंजारी बोली में जोड़ए अदार एक अदार हो जाता है । जैसे देखिए कर्म(करम) दुर्गा (दुरगा) धर्म (धरम)

(11) एक वचन का प्रयोग - इस बोली में कभी-कभी एक वचन सूचक शब्द से ही बहुवचन का काम लिया जाता है । उदाहरण के लिए कोरा-कोरा

गावड़ी - गावड़ी

शब्द क्रमश: लड़का लड़के गायें या गायों का भी बोध कराते हैं ।

बंजारा संस्कृति के कुछ अपने शब्द तथा प्राचीन नाम

(1) घुंडी वाळो हाड्का - बकरा काटने के बाद विशिष्ट प्रकार की हड्डी को घुंडी वाळो हड्का कहा जाता है । यह हड्डी सन्मान पूर्वक तांडे के नायक को ही दी जाती है । केवल इस हड्डी के कारण तांडे का विभाजन हो जाता है ।

(2) समनक - बंजारा तांडा जहां भी रुकता है, वहां तांडे के सामने बकरा काटकर पूजा की जाती है । तांडे के लोग घर से बाहर ही पकाकर भोजन करते हैं । इस पूजा को समनक कहा जाता है ।

(3) सलोई - बकरे के मांस से खून निकालकर उसमें नमक डालकर खाद्य पदार्थ बनाया जाता है, जो सार्वजनिक रूप में सबको बांटा जाता है, उसे सलोई कहते हैं ।

(4) नारोजा- देवी देवताओं के सामने तो उसके गोश्त में हल्दी नमक डालकर पकाया गया खाद्य-पदार्थ जो प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है ।

(5) लदेणीं - बैलों के पीठपर सामान लादकर बंजारे व्यापार के लिये चल पड़ते, उसे लदेणीं कहा जाता है ।

(6) तांगली- विवाह के बाद मां-बाप की ओर से लड़की को भेंट रूप में दी गयी बड़ी गुणीं (बोरिया) जो घर में सन्मान से रखी जाती है । देवी देवताओं की पूजा उसके सामने होती है ।

(7) हवेली - विवाह के पश्चात लड़की को तांडे के बाहर निकाला जाता है, तब उसे बैल के पीठपर खड़ा करते हैं, उस समय वह घुंघट उठाकर अपने तांडे को आखिरी बार देखती है, जिसे हवेली कहते हैं ।

(8) जांगड- जिसके मां-बाप तथा जाति धर्म का पता न हो ऐसे आदमी को बंजारी बोली जांगड कहा जाता है ।

(9) पैली धारैर - महुए के फूल से निकाली हुई शराब जिसमें पानी न डालते हुए पीया जाताहै । उसे पैली धारैर या फूल कहा जाता है ।

(10) चकाणा - शराब पीते समय, जो भी खाद्य पदार्थ खाया जाता है उसे चकाणा कहा जाता है ।

प्राचीन नाम

पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
बूधा	बुदी	पज्जू	मौजली
गैमा	गौमली	सौमा	सौमली
देवा	दैवली	रुपला	रुपली
सकन्या	सकरी	वाल्या	वाली
रतन्या	रतनी	फामा	फामी
फापा	फापी	मिका	मिकी
सुन्दन्या	सुन्दल	दिपला	दिपी
फुल्या	फुली	मूल्या	मूली
हैमा	हैमाली	लखिया	लखी
धर्मा	धरमणीं	धौमा	धौमी

पुरुष : मौपा कन्या चतरु गुटीया गुटीया हामू दामू
स्त्री : पणी साली कैली सुरती गमणीं रणी मैथी लाम्की वासकी कैसली.

(6) बंजारा जनजाति की लौक कलाएं : बंजारा जनजातियों में लौक कलाएं भी प्रचलित है । आदिम तथा वन्य जातियों में अपनी लौक कलाएं हौती है । जिसके माध्यम से वे अपनी कलात्मक दृष्टि प्रगट करते हैं । बंजारा जनजातियों में कुछ लौग अपनी लौक कलाएं दिखाकर अपना जीवन चलाते हैं । डा० स्वर्णलता

अग्रवाल कहती है : "बंजारा वर्ग खेल और गाने बजाने में निपुण है । इनकी स्त्रियां निश्चय सुन्दर होती रही है । आज भी बंजारा जगह जगह खेल तमाशे करती घूमती रहती हैं ।[1] बंजारा जनजाति की लोक कथा में मलानुर ढाली नामक प्रसिद्ध गायक रहा है । लोक कथा में कहा गया है कि मलानुर जब गीत गाता था तो पंख पखेरु भी स्तब्ध होकर सुनते थे । तात्पर्य बंजारा जनजातियों में मनोरंजन के साधन मानो उनकी लोक कलाएं रही है ।

(क) <u>वाद्य तथा धुने</u> ÷ लोक साहित्य का कलात्मक आनन्द वाद्य के बिना लिया नहीं जाता है । लोक साहित्य का कलात्मक स्तर का आनन्द उसकी विभिन्न धुनों में समाया हुआ है । ढ्फ तथा अन्य वाद्यों की धुनों से पता चलता है कि किस त्यौहार तथा संस्कार का गीत गया जा रहा है । बंजारा जनजातियों में नगारा, बांसुरी थाली ढ्फ आदि वाद्य बजाये जाते हैं । नगारा वाद्य पर विशेष रूप से धार्मिक गीत गाये जाते हैं । बंजारा जनजातियों में धार्मिक धुनें इस प्रकार की प्रचलित है । लोणंग, सारदास, कुमरका धुल्या लर्नी आदि अन्य त्यौहार के समय ढ्फ बजाया जाता है । ढ्फ अंगुलियों के सहारे बजाया जाता है । एक लोक साहित्य में ढ्फ का वर्णन इस प्रकार से किया गया है ।

ढ्फ धीर बजा रै तारी जानीं ढळ्या[2]

बांसुरी बजाने का शौक बंजारा जनजाति में दिखायी देता है । एक लोक कथा में बांसुरी दुःख की धुन तथा सुख की धुन की बात प्रगट की गई है । डा० अम्बादास सुमन ने अपने ग्रंथ में इस प्रकार से कहा है - एक राजा के बेटी बनजारे की बांसुरी और बेन सुनकर मुग्ध हो जाती है ।[3] ढाली नामक व्यक्ति के पास अपना विशिष्ट प्रकार का वाद्य रहता है जिसे बंजारी बोली में किंगरी कहा जाता है । यह वाद्य लोक कथा के समय अधिक बजाया जाता है ।

1- डा० स्वर्णलता अग्रवाल "राजस्थानी लोकगीत" पृ०-127, सं०-1967

2- ढ्फ धीरे बजा तेरी जवानी ढल जायेगी ।

3- डा० अम्बादास सुमन "ब्रजभाषा शब्दावली" पृ०-312, सं०-1961

(ख) <u>नृत्य तथा खेल</u> : नृत्य तथा खेल आदिम जातियों की उपजत कला रही है । बंजारा जनजातियों में नारीयाँ त्यौहार आदि के समय सामूहिक तथा अकेली नृत्य करती हैं जिसे बंजारी बोली में नाचैर कहा जाता है । बंजारा नारियों का नृत्य गीत के साथ होता है । गोलाकार नारियाँ हात पांव कमर आदि हिलाकर आगे पीछे घुमती हुई नृत्य करती है । अन्य वाद्यों के साथ उनके पांव के गहनों से विशिष्ट प्रकार की आवाजों की धुनें भी निकलती है । अकेली नारी भी नृत्य करती है । हाथ में दिया लेकर तथा सर पर पानी का घड़ा लेकर नृत्य करती है । जिसे घोमेर नाच तथा लेन्गा नगारा रो नाच कहा जाता है ।

पुरुष केवल होली त्यौहार के समय नृत्य करते हैं जिसे बंजारी बोली में पायी धालेर कहा जाता है । पुरुष के गोलाकार में दो गुट बनते हैं । एक गुट आगे गाते हुये नृत्य करता है, उसी तरह दूसरा गुट वहीं पंक्तियाँ दोहराते हुये नाचता गाता है । पायी नृत्य पांव की आगे पीछे मध्य आदि की हलचल पर होती है । बैठना उठना हात में रुमाल लेकर कूदना आदि क्रियायें नृत्य के समय की जाती है । बंजारा पुरुष होली के समय रात-रात नाच कूदकर निकालता है । बंजारा जनजातियों में नृत्य गीत ही अधिक प्रचलित है ।

लड़के लड़कियों की विभिन्न खेल तथा खेल-गीत बंजारा जनजातियों में प्रचलित है । छोटी लड़के तथा लड़कियों के गीत प्रायः इस प्रकार के है । टिकली मारन जो, करी आलाऊ करकी सांकळ सालीयारो पेट फटे रूम रूप, चोंटी पूरम देखिये और माकलीम बेसीय एक जगह बैठकर भी खेल खेले जाते हैं । आलदी मालदी, हागेन भी मूतेन भी, तार हाथ कत ह, आदि खेल लड़के लड़कियाँ खेलते हैं । पुरुषों में मोई दंन्ना दनी, सूर लकड़ी झापका आदि खेल खेले जाते हैं । विशिष्ट त्यौहार आदि के समय कुस्ती तथा लकड़ी घुमना, शक्ति प्रदर्शनी के लिये बड़े-बड़े पत्थर उठाना । बोझ लेकर उठना बैठना आदि भी एक तरह के खेल बंजारा जनजातियों में दिखायी देते हैं । तात्पर्य सारे खेल तथा नृत्य में मनोरंजन के साथ कलात्मक अंग भी होता है ।

(ग) हस्त कलाएं :- बंजारा जनजातियों में हस्तकला की विभिन्न पद्धतियां उनकी कढ़ाई-बुनाई के काम में दिखायी देती है । बंजारा नारी की वेशभूषा एक तरह से उसकी हस्तकला की प्रदर्शनी है । अपने सारे वस्त्रों पर बुनाई कढ़ाई करके ही वह पहनती है । सुई तथा धागे से वह कढ़ाई बुनाई का काम करती है । फुरसत के समय बंजारा स्त्री सुई धागों का काम करते रहती है । लड़की को बचपन से कढ़ाई-बुनाई का काम सिखाया जाता है । बंजारा नारी की सबसे प्रिय वस्तु सुई डोरा मानी गई है । आगे चलकर सूई डोरा नारी वाचक शब्द बन गया है । ओढ़नी घुंघट, चोली , घाघरा आदि पर वह विशेष रूप से बुनाई करती हैं । कोथेली गाला ठेपों कन्या आदि वस्तुयें इनकी हस्तकला की कलात्मक दृष्टि प्रगट करती है । बुनाई में विभिन्न प्रकार हैं - जिसे बंजारी बोली में सुदो हाथेर हाके हाथेर घर छोल्न पलटो फरती चाल आदि नाम दिखायी देते हैं । उसके अपने बाल संवारने की पद्धति में भी कलात्मकता दिखायी देती है । अपने हाथ तथा पांव पर गुंदवाने की प्रथा भी बंजारा जनजाति में प्रचलित है । विभिन्न प्रकार की आकृतियां अपने शरीर पर वह गुंदवाती हैं जिसमें भी उसकी कलात्मकता प्रगट होती है । तात्पर्य बंजारा जनजातियों में विभिन्न लोक कलाएं दिखायी देती है ।

उपसंहार

महाराष्ट्र के बंजारा लोक साहित्य के अध्ययन से कुछ बातें हमारे सामने आती हैं । बंजारा जनजाति मूलत: राजस्थान की घुम्मकड़ जाति रही है । व्यापार के लिये तथा रसद पहुंचाने के काम के लिये वह दक्षिण भारत में सत्रहवीं शताब्दी में गई है । महाराष्ट्र में इस जनजाति का इतिहास चार सौ वर्ष पुराना है । अंग्रेजों के आने से इनका पारम्परिक व्यवसाय धीरे-धीरे बंद हो गया । आगे चलकर यह जनजाति अपने पेट की चिन्ता में इधर-उधर घूमने लगी ।

बंजारा जनजाति का प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं है । बंजारा जनजाति के प्राचीन इतिहास के बारे में दो प्रकार की धारणाएं मिलती है । एक विचार प्रवाह मराठी के प्रसिद्ध इतिहासकार प्र० रा० देशमुख का है जो बंजारा जनजाति को अनार्य मानते हैं । दूसरी विचार धारणा बंजारा जाति के इतिहासकार बली राम पटेल का है, जो यह मानते हैं कि बंजारा जनजाति मूलत: क्षात्रिय राजपूत है । प्र० रा० देशमुख बंजारा जनजाति की तुलना सिंधु संस्कृति कालीन पणी जाति के साथ करते हैं । जो व्यापार करने वाली एक जाति थी । उनकी धारणा है कि बंजारा जनजाति पणी जाति की एक शाखा रही है । बंजारा जनजाति के लोक साहित्य के अध्ययन के बाद मेरा विचार यह है कि बंजारा जनजाति अनार्य नहीं है । वह आर्यों में से ही विकसित होने वाले क्षात्रिय वर्ण के अन्तर्गत है । वर्ण व्यवस्था पहले कर्मगत थी और एक वर्ण का व्यक्ति अपनी योग्यता अथवा कर्म के अनुसार दूसरे वर्ण में सम्मिलित हो सकता था । क्षात्रिय वर्ण के लोग भी व्यापार कर सकते थे और तब वे वैश्य कहला सकते थे । वर्ण व्यवस्था बाद में जन्मगत हो गई । बंजारे मूलत: क्षात्रिय वर्ण से संबंधित थे, पर वे बाद में व्यापार करने लगे और बंजारे कहलाने लगे । पर इनके

समाज में क्षत्रिय वर्ण की अनेक विशेषताएं बनी रही, और अनेक कारणों से वे एक अलग जाति के रूप में संगठित हुए। इनमें भी दो वर्ग दिखायी देते हैं। एक लभान और दूसरा गोर बंजारा। एक ही जाति के ये दो वर्ग हैं । भिन्न जातियों के समान दिखायी देते हैं। बंजारा जनजातियों के इतिहास के प्रति आज शोध की आवश्यकता है। विभिन्न ग्रंथों के आधारों को लेकर मैंने बंजारा जनजाति की चर्चा की है। तात्पर्य यही निकलता है कि बंजारा जनजाति प्राचीन काल से बैलों के पीठ पर सामान लादकर ले जाया करती थी। मुस्लिम काल में बंजारा शब्द की उत्पत्ति भी फारसी शब्द से हुई है। ऐसा जान जेम्स मानते हैं। बौद्ध तथा गुप्त काल में बंजारा जनजाति जैसे व्यापार करने वाले को सार्थ वाहक कहा गया है। बंजारा शब्द का प्रयोग नहीं किया है। बंजारा जनजाति की उत्पत्ति तथा उसका व्यापार प्रारंभ करने का काल निर्धारित करना कठिन कार्य है। इसके प्रति ऐतिहासिक दृष्टि से शोध की आवश्यकता है।

आजकल घुमन्तू जातियों के प्रति शोध हो रहा है। घुमक्कड़ जातियां सारे देशों में दिखायी दे रही है। जिसे जिप्सी कहा जाता है। शेरसिंग शेर ने अपने ग्रंथ "द सिकलगार्स आफ पंजाब" में बंजारा जनजाति को जिप्सी कहा है। बंजारा जाति और दुनिया में रहने वाली जिप्सी जातियों की तुलना करते हुए कहा है कि भारत की बंजारी जाति भी जिप्सी जाति है। इस बात को चमनलाल ने अपने जिप्सी नामक ग्रंथ में दक्षिण बंजारा जनजातियों के फोटो दिये हैं और बताया है कि बंजारा जनजाति भी जिप्सी जाति है। जिप्सी जातियां और बंजारा जाति की वेशभूषा तथा भाषा के प्रति खोज की आवश्यकता है, क्योंकि भाषा तथा वेशभूषा को प्राचीन संदर्भ अवश्य होते हैं। बंजारा जनजाति की भाषा तथा वेशभूषा की बात प्रो० रा० देशमुख ने उठायी है और कहा है कि इसका शोध से बंजारा जनजाति के प्राचीन संकेत मिल सकते हैं। इस दिशा में भारत देश में विश्व बंजारा रोमा (जिप्सी) मातृत्व रक्षण तथा सांस्कृतिक परिशोध प्रतिष्ठान नामक संस्था खोज-कर रही है। इस संस्था का एक प्रतिनिधि मण्डल पश्चिम जर्मनी के सम्मेलन में 16 मई से 20 मई 81 के शिविर

में गये थे । जहां विश्व जिप्सीयों का सम्मेलन संपन्न हुआ था । तात्पर्य बंजारा जनजाति के इतिहास के प्रति आज विशेष रूप से प्रयत्न हो रहे हैं । जिसके द्वारा बंजारा जनजाति का प्राचीन इतिहास उपलब्ध हो सकता है । इनके कुल गोत्रावली की चर्चा परिशिष्ट "स" में दी गई है ।

द्वितीय अध्याय में बंजारा लोक साहित्य का संकलन के पश्चात वर्गीकरण किया गया है । लोक साहित्य का वर्गीकरण रूप के तथा भौगोलिकता के आधार पर किया जा सकता है । अभी तक लोक साहित्य के रूप को आधार मानकर किया हुआ वर्गीकरण सर्वमान्य रहा है । मुझे बंजारा जनजातियों के लोक साहित्य संकलन के बाद ऐसा लगा कि आदिम तथा वन्यजातियों के लोक साहित्य को रूप के आधार के साथ भौगोलिकता के आधार पर ही वर्गीकृत किया जा सकता है । इसलिये मैंने भौगोलिकता को आधार मानकर वर्गीकरण किया है जिसके कारण आदिम तथा वन्यजातियों के लोक साहित्य का अध्ययन अधिक सरलता से हम कर सकते हैं । बंजारा लोकसाहित्य का वर्गीकरण करते समय लोक साहित्य के भेदों की चर्चा के साथ उसके उदाहरण भी दिया है । बंजारा लोक-साहित्य के साथ भारतीय लोक-साहित्य की परम्परा का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया है जिसके कारण बंजारा लोक साहित्य और स्पष्ट हो सका है । बंजारा जनजाति भारत के सभी प्रांतों में दिखायी देती है । मैंने केवल महाराष्ट्र प्रांत के बंजारा लोक साहित्य का संकलन किया है । महाराष्ट्र प्रांत के तीन विभाग मानकर वहां के बंजारा जनजाति का क्षेत्र की विशेषतायें भी प्रगट की है । जिसके कारण महाराष्ट्र के संपूर्ण बंजारों का लोक साहित्य का अध्ययन करना सरल बन पाया है ।

तीसरे अध्याय का मुख्य उद्देश्य महाराष्ट्र के बंजारा लोक साहित्य के माध्यम से बंजारा समाज को प्रस्तुत करना था । लोक साहित्य तथा समाज का संबंध वैसे भिन्न रूप में देखा नहीं जाता । लोक साहित्य जनता जनार्दन की देन है, जिसमें जनता अपना स्वरूप व्यक्त करती है । लोक-साहित्य द्वारा उस

समाज की प्रतिभा का आकलन हो सकता है । बंजारा लोक साहित्य द्वारा यह स्पष्ट दिखायी देता है कि बंजारा जनजातियों में सामूहिक जीवन महत्वपूर्ण रहा है । सामूहिक जीवन की अच्छाई तथा बुराइयों का परिणाम बंजारा समाज पर हुआ है । बंजारा जनजाति अपने तांण्डा पद्धति में ही जीती रही है । नायक कार्यभारी के नेतृत्व का परिणाम अधिकतर इस समाज की अवनति में दिखायी देता है । नायक कार्यभारी तांडे के सर्वाधिकारी होने के नाते, तांण्डा की सामान्य जनता इनके आदेश का पालन करना अपना धर्म समझती रही । जिसके कारण समाज सामूहिक जीवन पद्धति को जल्दी छोड़ नहीं सका । लोक साहित्य के माध्यम से समाज के विभिन्न अंगों की चर्चा की है जिसमें आर्थिक स्थिति पर अधिक बल दिया गया है । आर्थिक स्थिति का वर्गीकरण मैंने दो तरह से किया है । नायक कार्यभारी की आर्थिक स्थिति तथा सामान्य जनता की आर्थिक स्थिति इसके स्वरूप तथा परिणामों की भी चर्चा की गई है ।

तांण्डा व्यवस्था में अपनी आंतरिक व्यवस्था बना रखने के लिये विभिन्न महत्वपूर्ण व्यक्तियों की चर्चा की है । समाज में प्रचलित प्रथाओं को दो विभागों में विभाजित किया है । सामाजिक प्रथाएँ तथा सामाजिक प्रथायें । समाज में प्रथाओं का अपना महत्व होता है, वह समाज के जीवन में इस तरह से चली आती हैं कि जिसे छोड़ना चाहे तो भी जल्दी छोड़ा नहीं जा सकता है । आज महाराष्ट्र के बंजारा समाज को हम दो विभागों में बांट सकते हैं । एक स्थिर समाज दूसरा अस्थिर समाज । नायक कार्यभारी की आर्थिक स्थिति प्राचीन काल से ही ठीक-ठाक रही है । व्यापार बंद होने के बाद तांडे के नायक तथा कार्यभारी का परिवार अपनी आर्थिक स्थिति के कारण स्थिर हो गया है । किन्तु सामान्य जनता जो केवल सामान ढोने का काम करती थी, उनकी अवस्था आज भी अस्थिर दिखायी देती है । लोक साहित्य के माध्यम से समाज का स्वरूप प्रगट करना यह उद्देश्य रहने के कारण समाज का परिपूर्ण चित्र व्यक्त हुआ नहीं है । अन्त में लोक साहित्य की अपनी मर्यादायें हैं । उसका परिणाम समाज का चित्र व्यक्त करने में हुआ है । तात्पर्य दूसरे अध्याय में लोक साहित्य

से समाज का अंत बाह्य अंग प्रकट हुआ है ।

चौथे अध्याय में बंजारा जनजाति की संस्कृति का विवेचन उसके लोक साहित्य के आधार पर किया गया है । संस्कृति में समाज की सारी बातें समा जाती है । बंजारा संस्कृति मेरी एक पुस्तक है जिसके बंजारा संस्कृति की विशेष चर्चा है । बंजारा संस्कृति व्यक्त करने के लिये किसी भी जाति के धार्मिक विश्वास महत्वपूर्ण माने जाते हैं । बंजारा जाति हिन्दू होते हुए भी कुछ अपने पारम्परिक धार्मिक विश्वास इनमें दिखायी देते हैं । लोक साहित्य के माध्यम से धार्मिक विश्वासों की चर्चा की गई है । उसके बाद मनुष्य के जीवन में त्यौहार तथा संस्कारों का अपना महत्व होता है जो अनादि काल से अनुकरणात्मक ढंग से समाज में चले आते हैं । जिसका मनुष्य केजीवन पर परिणाम होता है । सुख-दुख व्यक्त करने में भी संस्कृति प्रगट होती है ।

संस्कृति में वेशभूषा का भी अपना महत्व होता है । वेशभूषा तथा आभूषण अपनी आंतरिक भावना को व्यक्त करते हैं । बंजारा स्त्री की वेशभूषा का अपना ढंग है, जिसके कारण अन्य समाजसेअलग ही दिखायी देती है । बंजारा संस्कृति में लाल रंग विशेष पसन्द का रंग रहा है । उसके साथ सफेद रंग को वे पवित्र रंग मानते हैं । तात्पर्य रंगों का भी एक महत्व अपनी संस्कृति में होता है । बंजारा नारी की वेशभूषा के बाद उनके आभूषण की चर्चा की गई है । बंजारा स्त्री आभूषण इतने पहनती हैं कि कभी-कभी आभूषणों के कारण ही शरीर वैभव दिखायी देने लगता है । बंजारा नारी की वेशभूषा तथा आभूषण के प्रति अंग्रेज विद्वान इन्थर थारस्टन कहा है कि "बंजारा स्त्री अपने शरीर पर पाँच तैसे दस पाउण्ड बोझ के गहने पहनती है । सर से लेकर पांव की उंगलियों तक बंजारा स्त्री आभूषण पहनती है । हर एक आभूषण का अपना धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्व होता है ।

रहन-सहन , खान-पान आदि की चर्चा संस्कृति का अंग है, बंजारा जनजाति के रहन-सहन, खान-पान की बातें लोक साहित्य में हमें दिखायी देती हैं ।

भाषा मनुष्य के जीवन व्यवहार का महत्वपूर्ण अंग होती है । बंजारा जनजाति की अपनी बोली है, जिसे वे गोर बोली तथा बंजारी बोली कहते हैं । बंजारी बोली राजस्थानी भाषा की उपबोली रही है , यह बात भाषा शास्त्री के विचार को आधार बनाकर प्रगट की गई है । बंजारी-बोली मूलत: राजस्थानी भाषा की उपभाषा रही है । बंजारी बोली की अपनी विशेषताओं की चर्चा की गई है, इनकी अपनी संस्कृति साफ सुथरी प्रगट होने के लिये बंजारा संस्कृति के प्राचीन शब्द तथा प्राचीन नामावली दी है । अन्त में लोक जीवन तथा लोक संस्कृति लोक कला भी होती है । बंजारा जनजाति की लोक कलाओं के प्रति भी मेरे विचार प्रगट किये हैं । तात्पर्य उपसंहार में यह बात उठायी जा सकती है, कि महाराष्ट्र के बंजारा लोक साहित्य के माध्यम से बंजारा जनजाति का स्वरूप हमारे सामने आता है । बंजारा जनजाति का लोक साहित्य तथा भाषा की दृष्टि से भारतीय स्तर पर खोज होना आवश्यक है ।

परिशिष्ट (क)

विशिष्ट लोकगीतों का संकलन

(1) संस्कार गीत (जन्मगीत) :

वेई माता मावली, हरी मरी रखा ।
वेई माता बाल हरी मरी रखा ।
सुलली हेरी लैतानीं वर आयस
सूई दौरा लैतानीं पर जायस
मलो जल्मो केसरीया राजपूत आलन्द वदावो
ये धरती रे लैरा, आंवलीया ।
आयो ये आलन्द मनावो ।
तू कुलै नदे री बाला रे गोविन्द गोबिन्द
तू यशोदा नंदरो बाला रे गोविन्द गोबिन्द ।[1]

(2) वदाई गीत :

कोली आवे कोली जावे
कोली मांही जग समाव
थालो धोलो हांसला ।

पालकीया आसवार

1- देवी मां, जिस मां ने पुत्र को जन्म दिया है, उसकी जिन्दगी सदा हरी मरी रखो । देवी मां ! पुत्र की जिन्दगी हमेशा फलती-फूलती रहने दे । सुलली और डोरा लेकर हमारे घर आवो । सूई-डोरा लेकर मां और कहीं पर जा । यह धरती का पुत्र पैदा हुआ है । अच्छा हुआ है, अपने घर में केशरिया राजपूत आया है, आनन्द मनावो । तू कौन से नन्द का लड़का है । तू यशोदा और नन्द का सुपुत्र है । गोविन्द ! गोविन्द ! आनन्द मनावो ।

मुंगे आवला मोगरा ताली आवदा बान ।
गुरु बाबा री सदा सदा ज्ञान ।[1]

(3) ढुंढ गीता

चरीक चरीयां चम्पा ले ढूं ढू चराये लेरा ले ।
पेलो बेटा नायकी धर ये ।
दूसरो बेटा कारभारी करीयै । चरीक चरियां
तीसरो बेटा खाडू चरावे ।
चवथो बेटा छेली चरावे । चरीक -----
पांचवो बेटा घोड़ घुमावे
छोवों बेटा मां बाप समाले । चरीक ----
सातवों बेटा होय सुपती
शिक्ष शिकावच ------ चरीक चरीया ----.[2]

1- यह दुनिया एक जंगल-पहाड़ियों की खाई के समान है । इसमें अनेक आये और चले गये हैं । तुझे गुरु बाबा का आशीर्वाद है । तू हर समय सफेद घोड़े पर सवार होकर चलते जा । तुम पर किसी ने वार किया तो वह तुझे फूल के समान लगेगा । तू अपने गुरु बाबा का स्मरण करते रहना ।

2- चम्पा की बेलि जिस तरह से फूलती है, उस तरह से लड़का बढ़ता जाये । जिस तरह से उसकी देखभाल खानपान किया जायेगा उसी तरह उसकी उम्र बढ़ती जायेगी । पहला बेटा टांडे का नायक बनेगा । दूसरा बेटा टांडे का कार्यभार संभालेगा । तीसरा बेटा जानवर पालेगा, चरायेगा । चौथा बेटा बकरियां पालेगा , पांचवां बेटा घोड़े पर बैठकर वीरता, दिखायेगा । छटां बेटा मां-बाप की देखभाल करेगा । सातवां बेटा सुपुत्र होगा जो ज्ञान की बातें लोगों को समझायेगा ।

(4) विवाह संस्कार के गीत (स्फुट गीत):

वैतडू आयी वाहे वाहे ती ।
चौरी मैनेन मेलीया माहेती ।।
कारे वैतडू स्कलोंच आयी ।
तारी मैनन का कोणी है आयी ।।
वैतडू आयी हुं तु जाईस कू ।
वैतडू वायान आयी बनात माहेती लायी ।।[1]

(5) मैथी दल मैथी दल यै यै लाला ।
लरीया पैसा दे तू कि नायीरे ।।
मैथी फिरे कुंवारी कन्या, वौन देलन
आयी है यै अलम दुविया ।
लौरी वैलती बलाई मारती ली
लौरी वैतीती बलाई मारती ली
चाल लौरी यै, अब गौहीयान
गौहीया चाल वैठी चाल लौरी ---
कादे बुराही यैतडू बुंरैन चाली
वैतडू नाम चौका व कौलही चौका
वकौलही चौका थालीं भुगता गोका ।[2]

1- तू दूल्हा बनकर ताहे में आया है , लड़की को ले जाने के लिए । तू अपनी बहन को किराये पर रखकर आया है । क्यों रे लड़के अकेला ही आया है ? अपनी बहन को क्यों नहीं ले आया । उसकी शादी भी हम कर देते । क्यों रे लड़के ! तू हमारे ताहे में आया ही कैसे ? अब तू जायेगा कैसे ? विवाह के लिये आया, और सामान किराया का लेकर आया है ।

2- मैथी, हलदी हम सब मिलकर पीस रही हैं । लड़के वाले हम तुम्हारे नौकर

(6) त्योहार गीत -(तीज) :

छौरी गौरी थे दूधीया तलाव गदलौछ
छौरी गौरी थे रंगी रंगेरी वोम माचवी छ
छौरी गौरी थे पाणी भर जना रोकरी छ
छौरी गौरी थे पाणीं बिना तीज सुकरी छ
छौरी गौरी थे तान्डे रो नायक कत गोछ
छौरी गौरी थे वोरे बिना मलाव सूनो छ
छौरी गौरी थे तान्डेर नायकल कतगी छ
छौरी गौरी थे वोर बिना मऊलो सुनो छ[1]
छौरी गौरी थे दूधिया तलाव गदलो छ ।

नहीं, चल पैसे निकाल । मैथी कुंवारी लड़कियां पीस रही हैं । यह देखने के लिये सारी दुनिया आ गई है । कुंवारी लड़की थी, तब बहुत ठाट-बाट कर मटक-मटक कर चलती थी । अपनी आप तारीफ करती थी । अब क्या हुआ लड़की । तू तो दूल्हे के साथ चिपके के बैठी हुई है । कन्धे पर कुल्हाड़ी लेकर दूल्हा पेड़ काटने जंगल जा रहा है । उसका नाम चौका है, वह घर के कम्पोस्ट-गड्ढे की पूजा करता है । और चने -गुड़ आदि चुराता है ।

1- प्यारी सहेलियां । तीज़ को पानी देने के लिये हम दुधिया नामक तालाब पर आयी हैं । दूधिया तालाब का तो पानी खराब है । इस तालाब में रंगी-बिरंगी मछलियां हैं । वे हमें पानी भरने से रोक रही हैं । तीज़ को पानी नहीं दिया तो तीज सूख जायेगी । अब हम क्या करें । तान्डे का नायक भी कहां चला गया है, जिसके कारण तान्डा सुना पड़ा हुआ है । तान्डे की नायकिन भी तान्डे में नहीं है, जिसके कारण औरतों का मऊंड सूना-सूना लग रहा है । मेरी प्यारी सहेलियां । अब हम क्या करें , दूधिया तालाब का तो पानी खराब है ।

(7) तीज की पहेलियां :

तीज को पानी देने के लिये लड़कियां जाती है । वहां लड़कों का एक मुंड आकर लड़कियों को पानी भरने से रोक देता है । जब तक वे पहेलियों का जवाब नहीं देतीं तब तक लड़कियां पानी भर नहीं सकतीं ।

लड़का : सलं सलं बांधू पागली थे
मोड़ मोड़ बांधू फेंटा
भरी सभा म हात पकड़ू
म मुखियारो बेटा ।
लड़की : हांस बांदू हवेली रे
लैचन बांदू आटी
भरी सभा म हात कटावू
म वस्तीयारी बेटी ।[1]

लड़का : लग मग हाले भागलो थे गोरी राखे सेत
मुट्ठी की उलटा दे द, थे पणोंच पाकीये तारो सेत ।
लड़की : काचो उलटा क्वकचिया थे ।
नक लाने जीव जाय
घरदणीं न खावे तो पर घर कैसे जाय ।[2]

1- -- लड़का - मैं हेर-फेर करके अपनी पगड़ी बांध रहा हूं । मोड़-मरोड़कर फेंटा बांध लिया है । भरी सभा में तेरा हाट में पकड़ूंगा नहीं तो मुखिया वंश का बेटा ही नहीं ।
लड़की - बहुत देखी तेरी पगड़ी की शान । मैं भी खींच-तानकर अपनी चोटी ठीक कर लेती हूं । भरी सभा में तू मेरा हाथ पकड़ेगा तो तेरे हाथ को सभा में कटवा नहीं दूंगी तो मैं वस्तीया वंश की लड़की ही नहीं रहूंगी ।

(४) दीपावली का गीत :

चालौ यै साथलौं फूल तौड़न जावा ।
चली जांवा यै वड़ैवे बापूरै अंगणा म
विरारी सर्ण बाई, फौंदूरी फूल मंगायेां।
गौधन करायो वीरा गौदध पूजायौ ।
लांबलीयै यै लांबली तारी काढू चामली
तीन वलादू पीली पाम्बली ।
तीन लगाऊ गौधन नै म तीन पूजाऊ
गौधन मैं । लामली यै लामली -----
काहीं लैरा लैरीयै लांबली यै लांबली
काहीं फांका लावै बरुवा --- [1]

2- लड़का : भरी जवानी की अवस्था तुझे अब संभाली नहीं जाती । तेरी जवानी की खेती फल-फूल आयीं है । एक मुट्ठी भर मुट्ठा तू अगर दे दे तो तेरी जवानी की खेती और हरी-भरी रहेगी ।
लड़की : हे मूर्ख । तुझे पता है या नहीं, खेती का मुट्ठा अब तो भर भी नहीं पाया है । अभी तो वह मौम के समान है । हाथ लगने से भी उसका प्राण चला जायेगा । तुझे पता है, अभी घरवाले ने अपनी खेती का मुट्ठा नहीं खाया है । तू फिर यात्री । कैसे खायेगा । मूर्ख लड़के तू यहां से चला जा ।

1- चलो प्यारी सहेलियां आज दीपावली है, हमें गौ-माता की पूजा करनी है । गौ-माता की पूजा के लिये आओ- जंगल -खेती में जाकर रंगी-विरंगे फूल तोड़ लायें । मेरे भाई ने गेंदा के फूल मंगवाये हैं । भैया का त्यौहार है, वह गौधन की पूजा करना चाहता है । लांबली नामक फूल की झाड़ियां फूलों से लद-पद दिखायी दे रही है । उसकी हम चमड़ी निकालेंगे, फूल तोड़ेंगे । इसके साथ बरुवा नामक फूल वृक्ष भी

(9) होली के गीत :

होली के समय दो तरह के गीत गाये जाते हैं । नाच कूदकर जो गीत गाया जाता उसे "पायी" कहा जाता है । एक जगह बैठकर ढफ पर जो गीत गाया जाता है उसे "लैंगी" कहा जाता है ।

एक "पायी" गीत

उठ परवाती न वैकला ये लोरी कादल्या मारो ये कान ।
मान मनावदु न, लागी गणीं बैंला
वैकला पे बगदान ।
माले प फारी न, हाते माई फूलीयां
वलटो फरती चाल, रलब तलावली न,
रायचल गुंदला, वैकला गे बगदान
उन उदाळो तावलो तपच, न, छाया देकन
बेस कालो वापर छ न, वेचली रो
फाडू छ । छाया देकन बेस ।
तैट्टी तैटी पगली मत बांदो शोमीया
मरमा मरचटे लोक । तारो मारो मतरो
एक छ ये शौमणीं काहीं करीय लोग
दस पांच माई री मैन हुरे शौमीया
मातो लियेरे तोल, दस पाच माई मारी-
फाट वकलीथे यातो लिहुं ये तोल ।
आळी कराली नवसे पिचली, दोहरा कुं
दिने वाट । वाटे रो छाटलो कोणीं मानो
शौमीया आन न पड़े समनक ।

दिखायी दे रहा है । लामती और बरुवा दोनों के फूल तोड़कर हमें गोधन की पूजा करनी है ।

(10) <u>एक ढेंगी गीत :</u>

ल्फ धीरे रे वजा रे तारी जानी ढलजा

ल्फ धीरे वजा ---

1- भोर होने के पहले जानवर चराने के लिये प्रेमी जानवर को ताण्डे के बाहर निकालता है । यह देखकर प्रेयसि भी अपने जानवर छोड़ती है । उस समय कादल्या नामक कुत्ते ने कान फड़फड़ाये हैं । कुत्ते ने कहीं जाते समय कान फड़फड़ाया तो अशुभ माना जाता है । प्रेमी ने प्रेमिका को बहुत समझाया तब वह जानवरों के पीछे निकली । बातों-बातों में जानवर जंगलों में पहुंच गये हैं । प्रेमी आगे चला जाता है । विशिष्ट जगह जाकर जानवर चरने लगता है, वह प्रेमिका का रास्ता देखता है । इतने में प्रेमिका सिर पर पानी का घड़ा लेकर इसे दिखायी देती है । उसके हाथ में चांदी की बड़ी-बड़ी अंगूठियां हैं, जो चमक रही है । उसकी चाल इस तरह से है, कि समझ में नहीं आता, कि वह आगे जा रही है या पीछे जा रही है । (उलटी फिरती चाल) नज़दीक आने पर दोनों तेवड़ी नामक पेड़ की छाया में बैठ जाते हैं । तब प्रेमिका कहती है -- शोभिया ! तू इतना सजधज कर आजकल क्यों रहने लगा है ? पगड़ी को किस तरह से तू बांधने लगा है । यह सब तेरी हरकतें देखकर ताण्डे के लोग शंका की दृष्टि से देखने लगे हैं । प्रेमी कहता है-- शोभणीं ! जलने वालों को जलने दे । तेरा और मेरा यदि एक

मन मन है, तो ताण्डेवाले अपना क्या करने वाले हैं । तब वह कहती है ठीक है । किन्तु मैं दस भाइयों की बहन हूं । मेरे भाई तुझे एक दिन मार डालेंगे । वह कहता है -- अपने दस-पांच भाइयों की तू चिंता मत कर । मैं अकेला ही पर्याप्त हूं । दोनों आपस में बातें कर रहे थे, कि इतने में चारों ओर से सशस्त्र लोगों ने उन्हें घेर लिया । तब वह कहती है देख सुबह कुत्ते ने कान मारे थे, तुमने सुना नहीं, देखो क्या हो गया , अब क्या करें ?

ल्फहारौ घौर सणीं'र पाणीं भर दू
उतौ फैक दिनी बैन्लौ नाचणं लगीरै
ल्फ धीरै बजा --
ल्फ चढ़री कुंवारी तारै दोस तौरौ ।
सजनारी खौज मंतीच आली बाटेप
देख देख खौज गजब रौहै रै --- ल्फ धीरै -- [1]

(11) <u>नारी गीत(चक्की पर गाया जाने वाला गीत):</u>

हमारै तालै मा वाईं जौगी आयौ छ यै
सेर पसौ लादूं चू न, फैरन खाऊ चू
जौगी रै फनौली म काहीं घालू वाईं यै ।
जौगीन कैरी पर जौरै बापूरै, काहीं जौहै दै येन
-- बापू रै-----
घरै आंग वाईं तुलसी लगाईं यै
रौज करु छू औरी पूजा बाईं यै ।
हटनै गरीबी हमारी वाईं यै ----

1- सुन्दर ल्फ की आवाज सुनकर प्रेमिका कहती है, ल्फ धीरै धीरै बजा, नहीं तो तैरी जवानी ढल जायेगी । ल्फ की मधुर ध्वनि सुनकर पानी लैने गई प्रेमिका घड़ा फैंककर नाचने लगी है । ए कुंवारी लड़की । तैरे प्रैमी के ल्फ की आवाज और ऊपर चढ़ने लगी है । इससे प्रेमिका और परेशान हो गयी है । वह रास्ते पर आकर अपने प्रैमी के पांव के निशान जमीन पर पड़े देखकर, जौर-जौर से रो रही है । उधर ल्फ की आवाज और ऊपर चढ़ रही है ।

उठ पर बाती न, हात जोड़ू सारीन
हात जोड़ू चू बाई विनती करु चू यै
कना जाये गरीबी हमार बाई यै
आंगलैम उभे बाई देव धरम यै
देव धरम बाई लाचारी लैरे ल यै
कोई हटाये नी गरीबी बाई यै
औ गरीबन रंग चढ़ म नै रौ
बाग लगालो सारी बाई ये
चांदा सुरीयारी जोड़ी लपच यै
लैनी मारे जीवरे आशा बाई ये
बांग उभो बाई नायक नसावी यै
का सतवा लैरु छी, बापूरे
कना हाटीयै गरीब हमार बापूरे ।[1]

1- हमारे तांडे में भिक्षा मांगने वाला जोगी आया है । सेर लाकर मैं उसे पीसकर सबको खिलाती हूं । जोगी के झोली में मैं क्या डालूं । जोगी को कहती है, माफ करना बापू , आगे चला जा, मेरे पास दान-धर्म के लिये कुछ भी नहीं है । मेरे घर का पीछा गरीबी छोड़ती ही नहीं । उसके लिये मैंने घर के सामने तुलसी लगाई है, सुबह शाम उसकी पूजा करती हूं, किन्तु गरीबी जाने का नाम नहीं लेती । घर के सामने देव-धर्म बैठे हुये हैं, उसकी पूजा अर्चा करती हूं तो भी मेरी गरीबी जाती नहीं । देव-धर्म गरीबी के सामने लाचार बन गये हैं । गरीबी का जंग चढ़कर मेरे घर में लगा हुआ है । चंदा-सूरज के समान मैं गरीबी में तप रही हूं । मेरी जिन्दगी व्यर्थ ही जा रही है, मैं क्या करुं गरीबी मेरे घर से जाती ही नहीं । तांडे के सामने तांडे का न्याय देनेवाला नायक खड़ा हुआ है । उसे वह कहती है, नायक बापू हमारे गोर-गरीब की क्यों परीक्षा ले रहा हैं ?

(12) लौरी गीत:

हालर गुलर लैत वाली

वाला सूतो फलावाली

हालर गुलर कुणं करीयै, राजा रौ याली

काम करीयै । हालो किदी हालौटी किटी

कारी बालौली । हातमू दंलीया सौनेरो

फिगला सिल्यो मलरु रो ।

निदीं आयी आकीन, कुणं मारो मारे राजा नू

हालर गुलर कुंणं करीयै बालारी याली काम करीयै ।[1]

(13) धार्मिक गीत:

जै जै मराम्मा याली

धौलै सन्यार आसवार रैणों ।

पल्लि लली करणों । सपर वत आहणं

आणों । लेप वटाव होत क्यारैन चलाणों ।

दो पहर साढीं वैंणों । चार पहर साढा वैणों

राक वटाव वोत पाक करणों । याली मावली

बाग बगीचा फ फुलवाली हारी भरी

1- लोरी गीत में अर्थ महत्वपूर्ण नहीं है । शिशु को सुलाने के लिये विशिष्ट प्रकार की लयबद्ध ध्वनियां निकाली जाती हैं । हरी-भरी खेती है, मेरा राजा फूलों सो रहा है । इसे गाना गाकर कौन सुलायेगा जिसके कारण मां घर का काम कर सकेगी ? मेरे बेटे की आंख लाल-लाल हो गई है । क्या इसे लाल चिंटियों ने तो नहीं काटा है ? बेटा राजा अब तू सो जा तेरे आंखों में नींद आ रही है । तू सो गया तो मेरे हाथ में खेलने के लिये सोने का खिलौना दूंगी । तेरे वास्ते सुन्दर कीमती वस्त्र सिलवाऊंगी । तू बेटा अब जल्दी सो जा ----

रखाउणो । चार पौरो दनेरो तारो रेणों । दो पौरो
राते रो तारो रेणों । काले मातेर मन क्या का
पणे पणैमा चुकाचा याही मराम्मा । चुकी
मूली माफ करणों ए प्रसाद आपैरे देवले मै
पुजतो देणों याही सगली ।[1]

(14) सामान्य गीत :

बला बला क्षौचो वाईं दैती वैगी बला थै
मन आयदो फ्ूरलै मां थै
नाक म मूरिया न मूरिया न साकली
मन-----
गलैम हासली न, हासली न तीलरी
मन------
हाते म चुडीयान, चुडीयान बौथलू
मन-----
कलेन घाघरो न, घाघरेन डोरी
मन------
माथेम लौमटी न, लौमटीन घुघंटो
मन--------

1- पराम्मा देवी की वन्दना में यह गीत गाया जाता है ।
इसका भावार्थ इस प्रकार है :- तू सफेद बाघ पर सवार है । तू
गिरने वालों को संभाल लेती है । जब हम तेरा स्मरण करते हैं तो
तू वहां प्रगट होती है । दिन-रात तुम प्रसन्न रहती हो देवी मां ।
व्यापार के लिये हम राख भी भरते हैं, उसे तू सोना कर देती है ।
हे मां ! बाग-बागीचा और फुलवाडी को हरी-भरी रख । चार पहर
दिन के दो पहर रात के तेरा ही पहरा होता है । काले बाल के हम

बला बला कोंचो बाई बेंती वैणी बला थे
मन आयदो फ्ूरछे मा थे ।[1]

(15) नृत्य गीत :

वादला पाणीं थे पाणीं आयो अंदा धुंद
बाई वादला पाणीं थे पाली आयो भरपूर

आदमी हैं ।(अर्थात् कम उम्र) हमसे पग पग पर भूल होती है । चूक भूल माफ करना यह प्रसाद अपने दरबार में कबूल कर लेना देवी मां । तेरा हमेशा जय जयकार हो ।

1- भावार्थ : ताई की सहेलियां नाचने-खेलने के लिये आने नहीं देती, सहेलियों के फुंड में रहने नहीं देती क्योंकि उसकी वेश-भूषा रहन-सहन ठीक नहीं है । तब वह नारी कहती है, अब देखिये मैंने सारे कपड़े-गहने ठीक-ठाक पहने लिये हैं, फिर भी तुम मुफे अपने फुंड में क्यों आने नहीं देती । मुफे बुरा-बुरा कहती हो । मैं किस कारण अच्छी दिखायी नहीं देती । मैंने नाक में नथ पहनी है और उसमें सांकली भी लगाई है । अब क्या मैं अच्छी नहीं लगती ? मैंने हासली नामक चांदी का गहना पहना है । हाथ में मैंने चूड़ियां भर ली हैं और बाहुओं में बोदली नामक गहना पहन लिया है । सुन्दर घाघरा छोरी के साथ मैंने पहना है । माथे पर ओढ़नी और उस ओढ़नी का घूंघट भी लगाया है । तो भी आप मुफे अपने फुण्ड में क्यों आने नहीं देतीं । मुफे बुरा क्यों कहती हो किस कारण अब मैं बुरी लग रही हूं ?

नदीयारी पाणीं थै टाकलीं न आवरी छ । बाई--
नदियारी पाणीं थै गोलीयान आवरीछ
बाई नदी----
नदियारी पाणीं थै कलीयान आवरी छ - बाई
नदियारी पाणीं थै गले न आवगो छ ।[1]

(16) ऋतु-वर्णन का गीत :

फरमरीया बरसो थै
नानी मोठी बूंदे पड़ ।
गरजो गरजो बादल री मैल
नानी मोठी बूंदे----
पालीयांन गयली थै किचड़ बोत हुयो ।
पगला रपट गयो बेल्लो फूट गयो
फरमरीया मरसो थै नानी मोठी बूंदे पड़े ।[2]

1- भावार्थ : आंधी और पानी जोर से बरसने लगा है । सारा वातावरण अंधा-धुंध दिखायी देता है । देखते-देखते नदी नर्मदा बाढ़ के कारण भरकर जा रही है । मुझे तो उस किनारे पर जाना है । बाढ़ उतरने का नाम नहीं लेती । पानी में उतरते ही घुटने तक पानी आ गया । आगे चलने पर कमर, छाती, गले तक पानी आ गया है । अब आगे मैं जा नहीं सकती । नदी नर्मदा और भरपूर बाढ़ लेकर आ रही है ।

2- सावन के महीने का गीत है, अभी अभी तक धूप निकल रही थी, छोटी-मोटी बूंदे आने लग गई हैं । पानी जोर से नहीं आयेगा ऐसा समझकर मैं पानी भरने गयी । फरमरिया नामक वर्षा ऋतु ने मुझे सारा भिगो दिया है । पानी ज़ोर से बरसने से रास्ते में कीचड़ अधिक है जिसके कारण मेरा पांव फिसल गया और पानी का घड़ा भी फूट गया है ।

परिशिष्ट (ख)

बंजारा जनजाति की शाखायें तथा गौत्रावली

आजतक बंजारा जनजाति का प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं है। यह जाति कैसे निर्माण हुई तथा कहाँ से आई के प्रति इनका इतिहास अज्ञात है। इनके प्रति इस प्रकार के विवाद रहे हैं।

(1) बंजारा क्षात्रिय जाति है।

(2) बंजारा आर्य है।

(3) बंजारा अनार्य है।

(4) बंजारा राजपूत की एक शाखा है।

बंजारा जनजातियों का भारतीय स्तर पर एक अभ्यास मंडल स्थापित किया गया था। जिन्होंने भारतीय बंजारा जनजाति का सर्वेक्षण किया जिसमें बंजारा जनजाति भारत में इस नाम से पहचानी जाती है।

(1) बंजारा (2) बनजारा (3) वंजारा (4) वंजारे (5) बंजारी (6) ब्रीनजारी (7) ब्रिजवासी (8) लभान (9) लभानी या लभानी (10) लभाना (11) लंभाड़ी (12) लभान या लभाना (13) लभान (14) लभानी (15) लभाना या लौमना (16) बलदिया (17) लदेणियां (18) सुगली (19) गवार या गवारिया (20) गवारिया (21) गवारिया या गमारिया (22) गवारा (23) कंगी या कंघाशिया (24) फनाड़ा (25) सिरकीबंद (26) सिरकीवाला (27) सींगवाले वंजारी।

उपजातियां : (1) गौर (2) मथुरा या माथूर (3) ढाडी (4) सनार (5) नावड़ी (6) ढालिया (7) सिंगाल्या (8) मारु (9) बामनिया (10) बगौरा (11) गीगौरा या गीगौरा (12) चारण (13) बादी (14) वाजीगर (15) जौशी या भरवा (16) रौहिदास (17) धान लुटे

1- रणजीत संपादक अखिल भारतीय बंजारा सर्वेक्षण अहवाल पृष्ठ- 9, संस्करण 1968

बंजारा जनजाति के धर्म के प्रति एक बात स्पष्ट आज दिखायी देती है कि वे हिन्दू हैं। जिस तरह से विभिन्न धर्म भारत में विकसित हुये उसका परिणाम भी यहां की जातियों पर हुआ है। बंजारा जनजाति पर भी अन्य धर्म का परिणाम दिखायी देता है। प्राचीन काल में बंजारा लोगों ने बौद्ध धर्म स्वीकृत किया था, ऐसे संकेत जातक कथाओं में दिखायी देते हैं। बंजारे लोगों के व्यापार के लिये विभिन्न तांडे घूमते थे। किसी एक तांडे ने बौद्ध धर्म स्वीकृत किया होगा। आगे चलकर इस देश में इस्लाम धर्म आया। व्यापार तथा सनद पहुंचाने के काम में मौगल लोगों ने इन्हें लगाया था। जंगी-भंगी नामक बंजारों को ताम्रपट भी दिया गया था। इसके साथ बंजारा जनजाति के मुखिया को जहांगीर भी दी गई थी। इन सारी बातों का परिणाम धर्म परिवर्तन हुआ होगा। आज बंजारा जनजाति में मुसलमान बंजारा दिखायी देते हैं। "मुलतानी बंजारा बंजारों की दो शाखायें आज दिखायी देती हैं। एक लोधा एवं बनजारा लोधा आज पशु व्यापार तथा कृषि करते हैं"[1]। मालवा विभागों में यह जाति दिखायी देती है। बंजारा स्त्री आज भी चुस्त पायजामा के ऊपर घाघरा पहनती है। तात्पर्य इस्लाम धर्म का स्वीकार बंजारा जनजातियों के कुछ लोगोंने किया है।

आगे चलकर सिख धर्म का उदय हुआ। सिख धर्म का प्रचार उत्तर भारत में तो हुआ किन्तु इसके परिणाम महाराष्ट्र प्रान्त में भी हुये। कुछ लोग उस समय सिक्ख बन गये। सिकलगरी बंजारा जनजाति का इतिहास देते समय शेरसिंह शेर ने बंजारा जनजाति का इस प्रकार से गोत्रावली अपने ग्रंथ में दी है।

धाज

कोधाज

केसाव

|

| चट्टा | तीट्टा |

1- डा० चिन्तामणि उपाध्याय "मालवी लोकगीत एक-विवेचनात्मक अध्ययन : पृष्ठ-36, संस्करण 1964

इनका कहना है कि वहा ग्राम में रहने लगा । तीसरा जिप्सी के समान घुम्मकड़ निकला । इसके पांच पुत्र हुये । (1) नथला की सन्तान जो आगे चलकर बागरी कहलाने लगे । बागरी यानी पशु के शिकार पर उदर निर्वाह करने वाली जाति ।

(2) जोगला की सन्तान आगे चलकर जोगी कहलाने लगे ।

(3) सीमद इनके सन्तान लुहार जाति के कहलाने लगे ।

(4) मोटा-के सन्तान आज लभान बंजारे कहलाते हैं ।

(5) मोला के सन्तान आज बंजारा कहलाते हैं ।

आगे चलकर शेरसिंह शेर इनके गोत्रावली की चर्चा करते हैं । शेरसिंह शेर उत्पत्ति की लोक कथा बंजारा जनजाति में आज भी प्रचलित है ।

शेरसिंह बंजारा जनजाति के तीन गोत्र की चर्चा करते हैं :

(1) चव्हाण के है पुत्र मानते हैं ।

(1) करा (2) मुड (3) लेकुत (4) पालत्या (5) लावन्या (7) सपावट

~~(8) विसनवत (8)~~

(2) पवार के बारा पुत्र इस प्रकार के हैं :

(1) कारपला (2) भिशावत (3) गुरहाम (4) कुर्मावत (5) ब्रिजावंत (6) आमगोत (7) वाकडोत (8) चावहाड (9) लोकावत (10) लोहियल (11) वानी (12) तरखानी

(3) राठौड़ के सात पुत्र इस प्रकार हैं :

(1) भिका (2) मायोन (3) मुचाल (4) आलोत (5) जालोत (6) धरम सोत (7) पन्त[1]

- पवार राठौड़ चव्हाण की गोत्रावली से पता चलता है कि बंजारा जनजाति में तीन महत्वपूर्ण गोत्र रहे हैं । आगे चलकर जाधव तथा वन्तीया

1-

की लोक-कथा बंजारा जनजाति में इस प्रकार से प्रचलित है । पवार राठोड चव्हाण परिवार के साथ एक ब्राह्मण परिवार रहता था । आगे चलकर ब्राह्मण की मामा प्रसाद नामक लड़का हुआ । मामा प्रसाद तथा पवार गोत्र की लड़की जिसका नाम गुजरी था दोनों का प्रेम हो गया । यह घटना आगे चलकर ताडे में सबको ज्ञात हुई तब यह निश्चित हुआ कि दोनों का विवाह कर देना चाहिए । इसके लिये एक पंचायत बड़ के पेड़ के नीचे बैठी । यहां से बंजारा जनजाति में वड़तिया नामक नया गोत्र का निर्माण हुआ । बड़ के पेड़ नीचे न्याया पंचायत होने से इनके आने वाले सन्तान वड़तिया कहलायेंगे । ब्राह्मण तथा पवार के आंतरजातिय वैवाहिक संबंध से वड़तिया गोत्र की उत्पत्ति हुयी है । लोककथा में कहा गया है, जब पंचायत चल रही थी, तब एक कौवा आकर चिलाने लगा । तब लोगों ने कहा वड़तिया का कौवा की एक गोत्र है । आज की बंजारा जनजाति में हास्य व्यंग्यात्मक ढंग से कौवा वड़तियां का भाई है, कहकर मजाक किया जाता है । इस लोककथा का संकेत एक विवाह गीत आता है , वह इस प्रकार है :---

काधे धोती हाथे लोटी गंगा नहिन
चाली गुजरी
ऐ । गुजरी यै वामणासी हुं राजी ।[1]

आगे चलकर यह नया गोत्र जाधव गोत्र कहलाया । वड़तिया गोत्र के लोगों का ब्राह्मण गोत्र समझकर शादी-विवाह में इस गोत्र का व्यक्ति उपस्थित होता है । ब्राह्मण की जगह विवाह तथा अन्य धार्मिक संस्कार वड़तिया नामक गोत्र के व्यक्ति आज ही करते हैं ।

1-(क) काधे पर धोती और हाथ में लोटा लेकर गुजरी अब गंगा स्नान करने जा रही है । क्यों गुजरी तू ये ब्राह्मण के लड़के से कैसे राजी हो गयी है ।

(ख) यह गीत मैंने किसनसिंग चव्हाण ग्राम औरंगाबाद के सौजन्य से टेप किया है । लेखक ।

बंजारा जनजाति के महाराष्ट्र के लाप नेता बलीराम पटेल इन्होंने अपने ग्रंथ में बंजारा गोत्रावली और राजपूत गोत्रावली की तुलना कर निष्कर्ष निकाला है । बंजारा मूलतः राजपूत थे । बजरंग लाल लोहिया के ग्रंथ में कहते हैं -- राठौड़ के प्राचीन निवास स्थान कन्नौज ई० स० 1211 में राव सियाजी ने जोधपुर के राज सिंहासन की नींव डाली । उसी समय वे मारवाड़ आगये । इनकी गोत्रावली बंजारा जनजाति के राठौड़ गोत्र से मेल खाती है ।
(1) जोधा (2) भियोत (3) करनोत (4) कारावत (5) चांपावत
(6) कूपावत (7) तलोंवत (8) उदावत (9) मेड़तिया (10) करमसोत
(11) रुपावत[1]

तात्पर्य बलीराम पटेल भी इस प्रकार से राजपूत गोत्र तथा बंजारा जनजातियों के गोत्र की तुलना करते हैं । राजपूत के 36 गोत्र माने गये हैं । उसमें गौर गोत्र से बंजारों की उत्पत्ति बलीराम पटेल मानते हैं । पृथ्वीराज के समय भी इस गोत्र का उल्लेख मिलता है । पृथ्वीराज कालीन सामन्त 29 माने गये हैं । उस समय नागर राय गौर गोत्रीय था ऐसा संकेत पृथ्वीराज रासो ग्रंथ में मिलता है ।

बलीराम पटेल ने अपने ग्रंथ में विस्तार से गोत्रावली की नामावली दी है । वह इस प्रकार की है :

1. <u>राठौड़ के गोत्र</u>

(क) (1) बाला बाणनोत परिवार
(2) भुवाल (3) धरमसोत (4) जाटोड़ (राठौड़)
(5) मुरहावत (6) बाणोंद

(ख) <u>मैरसी गोत्र की शाखाएं</u>
(1) मानावत (2) फतुया (3) लटोड़ (4) मोड्रीच्या

1- बजरंग लाल लोहिया "राजस्थान की जातियां" पृ०-9, संस्करण-1954

(5) हजावत (6) सखावान (7) कुमावत (8) कौकरिया
(9) मूलावत (10) लेतावत

(ग) मौलासी गौत्र की शाखाएं

(1) सुदारत (2) रामन्या (3) जालपोत (4) दालवाबन

(घ) लेहा गौत्र (मैयावत) की शाखाएं

(1) मैया (2) उदावत (3) हापावत (4) जौन्सी
(5) बौन्सी (6) बासलौद (7) जमनावत

(ङ) समदर (वली) गौत्र की शाखाएं

(1) रामावत (2) करमटौट (3) लेतावत (4) घेघावत
(5) पातलौत (6) नैनावत (7) देवसौत

(च) बाणौंद गौत्र (कनिष्ठ राठौड़ की शाखाएं)

(1) पानगढ़ (2) रूपावत (3) घानावत (4) कुरावत
(5) सवासौढ़ (6) धरावत (7) सानावत (8) कन्हौड़
(9) लाहौरी (10) घेघावत (11) दुमावत (12) कुशावत
(13) बंदावत

2. पवार गौत्र की शाखाएं

(1) फारपला (2) विशावत (3) गुरहाम (4) लुणंसावत
(5) विंझावत (6) आमगौत (7) वाकलौत (8) चावजड़
(9) लौकावत (10) लौहियत (11) बाणी (12) तरखानी

3. चव्हाण गौत्र की शाखाएं

(1) केलुत (2) पालशुया (3) करा (4) लावणीया
(5) सपावट (6) मुड़

4. <u>सुरी गौत्र की शाखाएं</u>

(1) जावत (2) राजावत (3) तेजावत (4) विजरोंद

5. <u>वन्तियां तथा जाधव गौत्र की शाखाएं</u>

(1) बादावत (2) चौल्हा (3) लाखावत (4) तेजावत
(5) लुणावत (6) धारावत (7) धुगलोद (8) हालावत
(9) कुपासाद (10) मालोद (11) अजमेरा (12) जैटोत

वलीराम पटेल ने बंजारा गौत्रावली की पांच शाखाएं बतायी है। एक गौत्र में विवाह नहीं होता अन्य गौत्र के साथ विवाह होते हैं।

1- वलीराम पटेल (मांन्वी) गौर बंजारे लोकांचा(मराठी ग्रंथ) इतिहास पृष्ठ- 88, संस्करण 1939 ।

परिशिष्ट (ग)

हिन्दी संदर्भ ग्रंथ

(1) डा० कुलदीप : लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन
प्रकाशक : प्रगति प्रकाशन आगरा-3, संस्करण 1972

(2) डा० कृष्णदेव उपाध्याय- लोक साहित्य की भूमिका
प्रकाशक : साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद : द्वितीय सं०-1970

(3) डा० कृष्ण कुमार शर्मा: राजस्थानी लोक साहित्य का अध्ययन
प्रकाशक : राजस्थान प्रकाशन त्रिपौलिया बाजार जयपुर संस्करण-1972

(4) डा० कृष्ण कुमार शर्मा : राजस्थानी लोकगाथा का अध्ययन
प्रकाशक : राजस्थान प्रकाशन त्रिपौलिया बाजार जयपुर -2, सं०-1972

(5) केशव कुमार ठाकुर 'टाँड' लिखित राजस्थान का इतिहास
प्रकाशक : आदर्श हिन्दी पुस्तकालय इलाहाबाद : संस्करण -1965

(6) डा० के० एस० लाल 'हिन्दुस्थान के निवासियों का जीवन और परिस्थितियाँ'
प्रकाशक : भारत सरकार सूचना तथा प्रसारण विभाग, सं०-1969

(7) कालिका प्रसाद : बृहत हिन्दी शब्दकोष
प्रकाशक : ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी-1, संस्करण-तृतीय संवत-2020

(8) डा० चिंतामणि उपाध्याय मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन
प्रकाशक : मंगल प्रकाशन गोविन्द राजियों का रास्ता जयपुर : सं०-1964

(9) डा० जवाहर लाल हण्डू कश्मीरी और हिन्दी लोकगीत एक तुलनात्मक अध्ययन : प्रकाशक : विशाल पब्लिकेशन कुरुक्षेत्र, संस्करण-1971

(10) जियाउद्दीन अहमद बिहार के आदिवासी
प्रकाशक : मौती लाल बनारसी दास अशोक राजपथ पटना-4, सं०-1959

(11) जयशंकर मिश्र ग्यारहवीं शताब्दी का भारत । प्रकाशक : भारतीय विद्या प्रकाशन- वाराणसी- संस्करण-1968

(12) जगदीश प्रसाद पीयूष 'लोक साहित्य के आयाम'
प्रकाशक लोक साहित्य संस्थान ए-125 आवास विकास इलाहाबाद
संस्करण : 1978

(13) डा0 परमात्मा शरण:मुगल का प्रांतीय शासन
प्रकाशक : राष्ट्रीय प्रकाशन मण्डल 36 गौतम बुद्ध मार्ग लखनऊ
संस्करण- 1970

(14) प्रेम नारायण टण्डन ब्रजभाषा सूरकोष
प्रकाशक : लखनऊ विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश संस्करण : 1962

(15) बंजरंग लाल लोहिया : राजस्थान की जातियां
प्रकाशक : बंजरंग लाल लोहिया कलकत्ता , संस्करण : 1954

(16) डा0 बन्सीलाल शर्मा : किन्नर लोक साहित्य
प्रकाशक : ललित प्रकाशन ढेंढी सरैल बिलासपुर हिमाचल प्रदेश सं0-1976

(17) भोलानाथ तिवारी : भाषा विज्ञान शब्दकोष : प्रकाशक ज्ञानमण्डल
वाराणसी , संस्करण : 1964

(18) डा0 मनोहर शर्मा : लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा
प्रकाशक : रोशन लाल जैन एण्ड सन्स , जयपुर-3, संस्करण-1971

(19) मोहन कृष्णादर कश्मीर का लोक साहित्य
प्रकाशक : रामलाल पुरी कश्मीरी गेट नई दिल्ली : संस्करण : 1963

(20) डा0 मनोहर शर्मा: राजस्थान बात साहित्य एक अध्ययन
प्रकाशक : राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी जोधपुर, संस्करण-1976

(21) मोतीराज राठौड़ बंजारा संस्कृति
प्रकाशक मोतीराज राठौड़ नाईक नगर औरंगाबाद,संस्करण-1976

(22) एम0 एल0 शर्मा : राजस्थान
प्रकाशक:सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय,भारत सरकार संस्करण-1973

(23) मदन गोपाल गुप्त : मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति
प्रकाशक : नेशनल पब्लिकेशन हाऊस जवाहर नगर, दिल्ली सं0-1968

(24) डा0 त्रिलोचन पाण्डेय: लोक साहित्य का अध्ययन
प्रकाशक : लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद , संस्करण: 1978

(25) दया शंकर शुक्ल : छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन
प्रकाशक: ज्योति प्रकाशन: रामपुर, मध्यप्रदेश, संस्करण-1969

(26) डा० एस० बी० चौधरी :लोक साहित्य और पावरी भाषा
प्रकाशक : पुस्तक संस्थान, कानपुर ।
(27) डा० नानूलाल पाठक : हाड़ौती कहावतें
प्रकाशक: हाड़ौती लोक साहित्य प्रकाशन कोटा: राजस्थान, सं०-1975
(28) डा० एस० का० प्राचीन भारत एक रूपरेखा
(हिन्दी अनुवादक कन्हैया)
प्रकाशक : प्यूपल पब्लिकेशन प्रकाशन , नई दिल्ली संस्करण-1977
(29) रामनरेश त्रिपाठी: ग्राम साहित्य भाग पहला
प्रकाशिक : हिन्दी मन्दिर प्रयाग : संस्करण- 1951
(30) रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल : भारत का भाषा सर्वेक्षण :
प्रकाशक: हिन्दी समिति लखनऊ , उत्तर प्रदेश , संस्करण-1967
(31) डा० सरोजनि रोहतगी: अवधी का लोक साहित्य
प्रकाशक: नेशनल पब्लिकेशन हाऊस दरियागंज दिल्ली: संस्करण-1971
(32) डा० एस० एन० प्रसाद कथा साहित्यसागर तथा भारतीय संस्कृति
प्रकाशक - चौखम्भा औरियन्टलिया गोकुलभवन वाराणसी संस्करण-1978 ।
(33) सीताराम लालस: राजस्थानी सबद कोष
प्रकाशक : राजस्थान शोध संस्थान जयपुर , संस्करण: 1961
(34) डा० सन्तराम अनिल : कन्नौजी लोक साहित्य
प्रकाशक : अभिनव प्रकाशन: दरियागंज नई दिल्ली - संस्करण: 1973
(35) डा० सुरेश चन्द्र त्रिपाठी: कनऊजी लोक साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब
प्रकाशक : रूपायन प्रकाशन नई दिल्ली : संस्करण: 1977
(36) डा० श्याम परमार लोक साहित्य विमर्श
प्रकाशक : कृष्ण ब्रदर्स महात्मा गांधी मार्ग अजमेर संस्करण: 1970
(37) डा० श्याम परमार भारतीय लोक साहित्य
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : संस्करण : 1958
(38) डा० सावित्र चंद्र समाज और संस्कृति
प्रकाशक : नेशनल पब्लिकेशन हाऊस नई दिल्ली- संस्करण: 1976

(39) सुमंगल : राजस्थान
प्रकाशक : नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया , नई दिल्ली संस्करण: 1970

(40) डा० स्वर्णलता अग्रवाल : राजस्थानी लोकगीत
प्रकाशक : राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर : संस्करण: 1967

(41) डा० सम्पत्ति अर्याणी मगही भाषा और साहित्य
प्रकाशक : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना : संस्करण :1976

(42) डा० सत्येन्द्र लोक साहित्य विज्ञान
प्रकाशक : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी आगरा , संस्करण:1962

(43) डा० शकुन्तला शर्मा छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन
प्रकाशक : जीत मल्होत्रा रचना प्रकाशन , इलाहाबाद- संस्करण:1977

(44) डा० एस० भार्गव : मध्यकालीन भारत की समस्याएं
प्रकाशक : कैलास पुस्तक सदन ग्वालियर : संस्करण: 1973

(45) वीर राजेन्द्र ऋषी : स्त्री लोक साहित्य
प्रकाशक : आत्माराम एण्ड सन्स नई दिल्ली: संस्करण: 1956

(46) डा० हरिदत्त भट्ट गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य
प्रकाशक : हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश लखनऊ : संस्करण: 1976

मराठी संदर्भ ग्रंथ :

(1) आत्माराम राठौड़ श्री संत सेवादास लीला चरित्र
प्रकाशक अरविन्द प्रकाशन पुसद : संस्करण : 1973

(2) गं० बा सरदार महाराष्ट्र जीवन खण्ड भाग पहिला
प्रकाशक : जोशी लोखंडे प्रकाशन पुणे : संस्करण: 1960

(3) चिंतामण गणेश कर्वे महाराष्ट्र जीवन खण्ड भाग-पहिला
प्रकाशक : यशवंत गोपाल जोशी पुणे : संस्करण : 1954

(4) त्रिम्बक नारायण आत्रे गावगाडा
प्रकाशक : ह०वि० मोठे प्रकाशन 3-वेस्ट व्यू दादर मुंबई-संस्करण:1915

(5) दुर्गा भागवत लोक साहित्य
प्रकाशक : मकरन्द साहित्य प्रकाशन मुंबई संस्करण: 1967

(6) प्र० रा० देशमुख सिंधु संस्कृति ऋग्वेद हिन्दू संस्कृति
प्रकाशक : म० श० साठे प्राज्ञ पाठशाला वाई : संस्करण: 1966

(7) डा० प्रभाकर मांडे : लोक साहित्याचे अतः प्रवाह
प्रकाशक : कान्टिनेन्टल प्रकाशन : पुणे : संस्करण : 1975

(8) बळीराम पटेल गोर बंजारे लोकाचा इतिहास
प्रकाशक : देशमुख अण्ड कंपनी अमरावती संस्करण : 1939

(9) विद्याधर वामन भिडे मराठी भाषेचा सुवरस्वति शब्दकोश
प्रकाशक: चित्रशाला प्रेस पुणे : संस्करण: 1930

अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ

(1) CROOKE- The Tribes and Castes of North Western India Vol-II ; Publication-Cosmo Publication Delhi-6: 1974

(2) EDEGAR THURSTAN- Caste and Tribes of Southern India Vol.-IV ; Publication-Govt. Press Madras , 1909

(3) PRATAP- The Festivals of Banjara of Andhra Pradesh Publication - Tribal cut/Res/Training Institute Hyderabad : 1970.

(4) SHER SINGH SHER- The Sikaligars of Punjab. Publication: Sterling Publication Delhi-: 1966.

(5) R.V. RUSSELL- The Tribes and castes of the central provinces of India- Vol.II : Publication-Anthropolégical Publication Netherlands : 1969.

(6) RANJIT NAIK- Report of all India Bangara Study team Publication : A.B.B. S.S. Kurla Bombay : 1968.

पत्र-पत्रिकाओं की सूची

(1) बंजारा पाक्षिक

संपादक रणजीत नाईक कुर्ला मुंबई

होली विशेषांक मार्च 1976

(2) शोध पत्रिका

संपादक मनोहर शर्मा, राजस्थान शिक्षा विभाग राज0

सितम्बर: 1954

(3) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

स्वर्ण जयंती विशेषांक: अप्रैल :1971

संपादक: हिन्दी प्रचार सभा मद्रास

(4) सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति विशेषांक : अप्रैल : 1975

संपादक : श्रीराम नाथ सुमन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(5) विमुक्त जन (मराठी) बंजारा विशेषांक में जून जुलाई -1978

संपादक : प्रा0 सुरेश पुरी

लक्ष्मी निवास औरंगापुरा, औरंगाबाद ।